॥ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

कल्याण



हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर श्रावण, वि॰-सं॰ २०४९, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१८, जुलाई १९९२ ई॰

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य भारतमें २.५० रु॰ विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ५५.००रु॰ विदेशमें ९ डालर (अमेरिकन)

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**
रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित



प्रत्ये

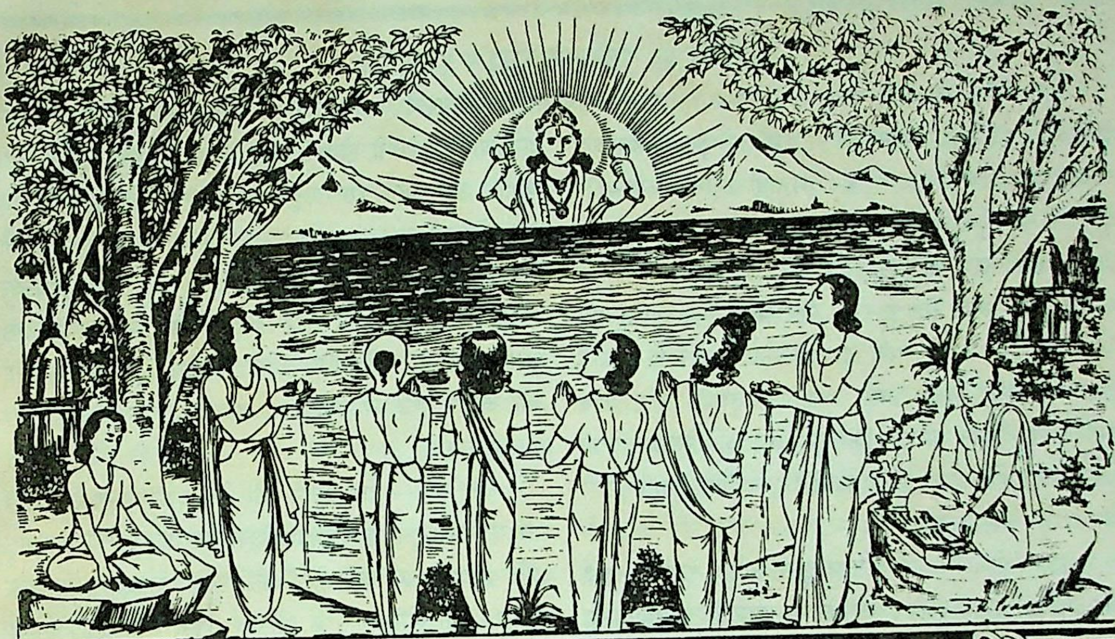
अङ्क

भारत

विदेश

वटुकभैरव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



कल्याण

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥

वर्ष ६६ | गोरखपुर, सौरश्रावण, वि॰सं॰ २०४९, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१८, जुलाई १९९२ ई॰ | संख्या ७ पूर्ण संख्या ७८८

वटुक भैरव

कालमेघ-श्यामल-तनु शोभित, मुद्रा वरद-अभय सुन्दर।
सुधाकलश, पाशाङ्कुश, फणि, माला, डमरूसे संयुत कर॥
पीत वस्त्र, रत्नोज्ज्वल भूषण, स्वर्णरत्न करधनि मनहर।
भाल त्रिपुण्ड्र सुशोभित, भैरव-वटुक सदा सेवक-हितकर॥

कल्याण

याद रखो—संसारमें सत्त्व, रज, तम—त्रिगुणका खेल हो रहा है। इसमें जहाँ सत्त्वगुण है, वहाँ तमोगुण भी है। जहाँ आदर्श गुण है, वहाँ दोष भी है। तुम यही करो—जिससे दोष दूर होते रहें, गुण बढ़ते रहें, परंतु दूसरेके दोषोंकी ओर मत देखो। ऐसा करोगे तो तुम्हें अपने अंदर गुणका अभिमान हो जायगा और इससे वह गुण भी दोष बढ़ानेमें कारण होगा।

याद रखो—तुम यदि दूसरोंमें दोष देखोगे तो तुम्हारी दोष देखनेकी आदत पड़ जायगी। तुम्हारी दृष्टि दोष देखनेवाली ही बन जायगी, फिर तुम्हें सदा और सर्वत्र दोष ही दिखायी देंगे। बिना हुए ही दिखायी देंगे; क्योंकि तुम्हारी दृष्टिमें दोषका ही चश्मा चढ़ा रहेगा।

याद रखो—जितना ही तुम दूसरोंके दोष देखोगे, उतना ही दोषोंका चिन्तन होगा। जिसका बार-बार चिन्तन होता है, वह चीज धीरे-धीरे अपने अंदर आकर अपना घर कर लेती है। अभिप्राय यह कि जितना ही तुम दोष देखोगे, उतने ही अधिक दोष तुम्हारे अंदर आ जायँगे।

याद रखो—तुम्हारे अंदर जो पुराने दोष वर्तमान हैं—बार-बार दूसरोंके दोष देखनेसे वे तरुण, बलवान् और पुष्ट हो जायँगे एवं नये-नये दोषोंको बुला-बुलाकर अपनी शक्ति बढ़ाते रहेंगे।

याद रखो—जब सभीमें तुमको दोष दिखायी देंगे, तब अपने अंदरके दोषोंसे घृणा निकल जायगी। उनका अपनेमें रहना अखरेगा तो नहीं ही, वरं अनुकूल दीखने लगेगा। फिर, उनके रहनेमें गौरव-बुद्धि होने लगेगी।

याद रखो—जब सभीमें दोष देखोगे, तब मनमें यह निश्चय होने लगेगा कि ये दोष तो सभीमें रहते हैं, ये निकलनेकी चीज हैं ही नहीं। इनके निकालनेका प्रयास व्यर्थ है। यों जब व्यर्थ प्रयास दीखने लगेगा, तब दोषोंके हटानेमें प्रवृत्ति नहीं होगी। एक विचित्र-सी निराशा और शिथिलता आ जायगी। दोषोंसे हार मानकर तुम्हारा मन उन्हें रहनेके लिये स्थायी स्थान दे देगा।

याद रखो—जब दोष देखनेकी आदत पड़ जायगी और सबमें हुए—बिना हुए दोष ही दिखायी देंगे, तब वास्तवमें दोष हैं या नहीं, इसकी जाँच कौन करेगा। बिना ही जाँच-पड़तालके पराये दोषोंका बखान करने लगोगे। अपने दोष यदि सच्चे भी होते हैं, तो भी मनुष्य उन्हें सुनना नहीं चाहता, उसे बहुत बुरा मालूम होता है और जब कोई किसीमें झूठे दोषोंका आरोप करके उनका प्रचार करता है, तब तो प्रायः मनुष्य उसे सहन कर ही नहीं सकता, वह विद्वेष-वैर मानने लगता है। क्रोध और हिंसातक कर बैठता है। अतः तुमसे लोगोंकी लड़ाइयाँ होंगी, कलह होगा, वैर-विद्वेष बढ़ेगा और जीवन नये-नये उपद्रवोंका तथा अशान्तिका क्रीडास्थल बन जायगा।

याद रखो—दोष देखने और दोष-दर्शनजनित उपद्रवोंसे ग्रस्त रहनेपर तुम्हारा पारमार्थिक साधन तो छूट ही जायगा, लौकिक शान्ति भी नहीं रहेगी और पारमार्थिक साधन छूटनेके समान दूसरी कोई हानि है ही नहीं। तुम रात-दिन जलोगे, आसुरी तथा राक्षसी भावोंके गुलाम होकर सदा संत्रस्त रहोगे। दुनियामें कहीं भलाई दीखेगी ही नहीं—संतों, महात्माओं और भगवान्में भी दोष दीखने लगेंगे, इससे जीवनका स्तर बहुत ही नीचे धरातलपर पहुँच जायगा।

याद रखो—यह मानव-जीवनकी बहुत बड़ी विफलता है—परम हानि है। इसलिये तुम किसीके भी दोष मत देखो, अपने दोष देखो और उनके लिये रोना, हताश होना छोड़कर वीरकी भाँति जूझकर उन्हें तुरंत निकाल दो।

याद रखो—तुम्हारी शक्ति अपार है। तुम अनन्तशक्ति आत्मा हो, चेतन हो, परमात्माके अंश हो। मन-इन्द्रियाँ तुम्हारे दास हैं—तुम अपने आत्मस्वरूपको पहचानकर इनपर नियन्त्रण कर लोगे तो ये तुरंत तुम्हारे वशमें हो जायँगे। सारे दोष—जो इनके द्वारा ही होते हैं, डरकर भाग जायँगे। तुम परमात्माकी ओर सहज ही अग्रसर होओगे और अन्तमें उनको पाकर निहाल हो जाओगे। दूसरोंके दोष तो कभी देखो ही मत। हो सके तो गुणोंका चिन्तन भी मत करो, क्योंकि गुण-चिन्तनसे राग होता है और दोष-चिन्तनसे द्वेष। राग भी बन्धनकारक और पतनकारी ही है। अतएव प्रयत्नपूर्वक केवल परमात्माका ही चिन्तन करो, उन्हींका मनन करो और जगत्के पदार्थोंका चिन्तन, जो आवश्यक हो, केवल परमात्माकी प्रीति तथा सेवाके लिये ही करो।—**'शिव'**

हमारा लक्ष्य और कर्तव्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्य सबसे श्रेष्ठ प्राणी माना जाता है, वह अपनेको श्रेष्ठ समझता है और विचार करनेपर यह सिद्ध होता है कि भगवान्ने उसकी रचनामें विशेषता रखी भी है, परंतु वह वास्तवमें श्रेष्ठ तभी है, जब कि अपने जीवनके प्रधान लक्ष्यको ध्यानमें रखकर अपना कर्तव्य-पालन करता है। आजके संसारकी ओर देखते हैं तो मालूम होता है, लक्ष्यको जानकर कर्तव्य-पालन करना तो दूर रहा, लक्ष्य और कर्तव्य क्या है, इस बातको भी प्रायः हमलोग नहीं जानते और न जानना चाहते ही हैं !

बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह शास्त्रोंसे, शास्त्रोंके वाक्य न समझमें आवें तो किन्हीं भगवत्प्राप्त पुरुषसे, खोज करनेपर भी वैसे पुरुष न मिलें तो धर्मको जानकर धर्मका आचरण करनेवाले किसी पुरुषसे, वह भी न मिले तो अपनी समझसे जो धर्मका जाननेवाला जान पड़े, उसीसे पूछकर अपने कर्तव्यको जान ले। कुछ भी न हो तो, कम-से-कम अपने अन्तरात्मासे तो पूछते ही रहना चाहिये। एक आदमी कहता है 'सत्य बोलना धर्म है।' दूसरा कहता है, 'धर्म-कर्म कुछ भी नहीं है।' ऐसी अवस्थामें अपने अन्तरात्मासे पूछना चाहिये। बुद्धिसे कहना चाहिये कि वह निष्पक्षभावसे अपना मत जनावे। ऐसा किया जायगा तो अन्तरात्माकी आवाज या बुद्धिका निर्णय यही मिलेगा कि—'सत्य बोलना ही ठीक है।' क्योंकि सत्य सभीको प्रिय है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य, अहिंसादि अन्यान्य प्रसंगोंपर भी विचार करना चाहिये। और अन्तरात्माका या बुद्धिका निर्णय प्राप्त हो जानेपर तदनुसार करनेके लिये तत्पर हो जाना चाहिये। ऐसे निर्णयको पाकर भी जो तदनुसार नहीं करते, वे अपना पतन आप ही करते हैं। अच्छी बात समझकर भी उसका पालन न करे, और बुरी समझकर भी उसका त्याग न करे, उसका पतन अवश्य ही होना चाहिये। श्रीभगवान् कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

(गीता ६।५)

'मनुष्यको चाहिये कि वह अपने द्वारा ही अपना उद्धार करे और अपने आत्माको अधोगतिमें न पहुँचावे। क्योंकि यह आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।'

हमें जो राग-द्वेष, शोक-भय आदि होते हैं, वे क्यों होते हैं ? लोग समझते हैं कि प्रारब्धसे होते हैं, परंतु बात ऐसी नहीं है। ये सब होते हैं अज्ञानसे। राग-द्वेष ही शोक-भयमें कारण हैं और राग-द्वेष ही क्लेश देनेवाले हैं। अविद्या यानी अज्ञान ही इनका हेतु है। अविद्याका नाश होते ही इन सबका अपने-आप ही नाश हो जाता है।

धन प्राप्त होना या नष्ट हो जाना, बीमारी होना या स्वस्थ हो जाना और जन्म होना या मर जाना—इन सबमें तो प्रारब्ध हेतु है। परंतु चिन्ता, भय, शोक, मोह आदिमें तो अज्ञान ही प्रधान कारण है। अज्ञानका नाश होनेपर शोक-मोह नहीं रहते। श्रुति कहती है—

'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।'

'हर्षशोकौ जहाति'

शोकादिमें यदि प्रारब्ध हेतु होता तो भगवान् अर्जुनके प्रति यह कैसे कहते कि—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(गीता २।११)

'तू शोक न करने योग्यके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचन कहता है। परंतु पण्डितजन जिनके प्राण चले गये हैं अथवा जिनके नहीं गये हैं, उनके लिये शोक नहीं करते।'

अज्ञानका नाश ज्ञानसे होता है। हमें साधन करके उस ज्ञानको प्राप्त करना चाहिये जिससे शोक, मोह, चिन्ता-भय, चोरी-व्यभिचार, झूठ-कपट और आलस्य-अकर्मण्यता आदि दोषोंका सर्वथा नाश हो जाय। ज्ञान होनेपर अज्ञानका कार्य रह नहीं सकता। बड़ी अच्छी रसोई बनी है, मिठाई बहुत ही स्वादिष्ट है, हम बड़े चावसे खानेको बैठे हैं। दो ही ग्रास लिये थे कि एक मित्रने चुपकेसे आकर सूचना दी कि 'मिठाईमें जहर है खाना मत' बस, इतना सुनते ही हम मुँहका ग्रास उसी क्षण थूक देते हैं, थाली दूर हटा देते हैं और पेटमें गये हुए

ग्रासको भी जल्दी वमन करके वापस निकालनेकी चेष्टा करते हैं। जहरका ज्ञान हो जानेपर पदार्थ कितना ही मधुर और स्वादिष्ट क्यों न हो, हम अब उसे नहीं खा सकते। मित्रकी बातपर विश्वास जो ठहरा, उसने जो बताया सो ठीक ही बताया है। बस, यही हाल संसारके भोगोंका है। हम यदि शास्त्र, भगवान् या संत पुरुषोंकी वाणीपर विश्वास कर लें तो फिर इन भोगोंमें कभी मन न लगावें। भगवान् स्वयं कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

'इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले जो ये सब भोग हैं, भ्रमवश सुखरूप दीखनेपर भी ये निस्संदेह ही दुःखोंको ही उत्पन्न करनेवाले तथा आदि-अन्तवाले हैं। बुद्धिमान् पुरुष इनमें नहीं रमता।'

इतना जानकर भी यदि मनुष्य इन्हींमें मन लगाता है तो वह महान् मूर्ख है। तुलसीदासजी महाराज भी कहते हैं—

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

लोग कह सकते हैं कि विषका असर तो तुरंत होता है, परंतु इसका तो कोई असर नहीं दिखलायी पड़ता, इसका उत्तर यह है कि विष भी तो कई प्रकारके होते हैं, ऐसे विष भी होते हैं, जिनका असर पड़ता है तो धीरे-धीरे, परंतु पड़ता है बड़ा ही भयानक! भोग ऐसे ही धीरे-धीरे असर करनेवाला भयानक मीठा विष है।

इसीलिये राजस विषय-सुखको भगवान्ने परिणाममें विषतुल्य बतलाया है—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

(गीता १८। ३८)

'जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है, वह यद्यपि भोगकालमें अमृतके समान भासता है, परंतु परिणाममें विषके सदृश है। इसलिये वह सुख राजस है।'

यदि कहा जाय कि 'हमलोग तो बहुत विष खा चुके हैं, इसके लिये क्या उपाय करें?' उपाय बहुत हैं। पहले खाया हुआ विष निकाला भी जा सकता है और पचाया भी! अच्छे वैद्य इसका उपाय बतला सकते हैं, परंतु पहले यह विश्वास भी तो हो कि यह वस्तुतः विष है। विश्वास होता तो कम-से-कम नया खाना तो बंद हो ही जाता। जब खाना उसी प्रकार चालू है, तब कैसे माना जाय कि हमने भगवान्के वचनोंपर विश्वास करके इन्हें दुःखदायी और विष मान लिया है?

सुनते हैं, पढ़ते हैं परंतु विश्वास नहीं होता। पूरा विश्वास होनेपर मनुष्य बिना उपाय किये रह ही कैसे सकता है? विश्वास ही विषनाशक साधनके लगनकी आधारभूमि है। सच्ची लगन कैसी होती है?

लगन लगन सब कोइ कहै, लगन कहावै सोय।
नारायन जेहि लगनमें तन-मन डारै खोय॥
जो सिर काटे हरि मिले तो हरि लीजै दौर।
ना जाने या देरमें गाँहक आवै और॥

परंतु इस विष-सेवनका त्याग तो करना ही चाहिये और शीघ्र ही करना चाहिये। क्योंकि विलम्ब होनेसे रक्षा कठिन हो जायगी। जबतक मृत्यु दूर है, देहमें प्राण है, तभीतक शीघ्र-से-शीघ्र उपाय कर लेना चाहिये। यह नहीं सोचना चाहिये कि अभी क्या है, कुछ दिन बाद कर लेंगे। कौन जानता है, मृत्यु कब आ जायगी। दीर्घजीवनका पट्टा थोड़े ही है! इधर विष तो लगातार चढ़ ही रहा है। रातको ही मौत आ गयी तो फिर क्या होगा? अतएव इसी क्षणसे जग जाना चाहिये और लग जाना चाहिये पूरी लगनसे!

हमारा लक्ष्य होना चाहिये परमात्माकी प्राप्ति, क्योंकि परमात्मा ही एकमात्र परम सुख और शाश्वती शान्तिके केन्द्र हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ और सबसे बढ़कर प्राप्त करने योग्य परम वस्तु हैं, उनकी प्राप्तिमें ही जीवनकी पूर्ण और यथार्थ सफलता है। और इस परम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये सतत प्रयत्न करना ही मनुष्य-जीवनके कर्तव्यका पालन करना है। इस कर्तव्य-पालनमें जो कुछ भी त्याग करना पड़े, वही थोड़ा है। बस, त्यागकी तैयारी होनी चाहिये, फिर शास्त्र कहते हैं कि 'परमात्मा मिल सकते हैं और उनका मिलना भी सहज ही है। और यह भी विश्वास रखना चाहिये कि हम परमात्माकी प्राप्तिके पात्र हैं। पात्र हैं, तभी तो मनुष्य-शरीर भगवान्ने दिया है। दूसरी योनियोंकी कमी तो थी ही नहीं, पशु, पक्षी, रीछ, बंदर कुछ भी बना सकते थे। फिर उन्होंने 'मनुष्य' क्यों बनाया? इसीसे

सिद्ध है कि हम पात्र हैं। भगवान्ने हमें मुक्तिका पासपोर्ट दे दिया है। अब जो कुछ कमी है, वह केवल हमारी ही ओरसे है। उन्होंने मनुष्य-शरीर देकर हमें मुक्तिका अधिकारी बना दिया, हम यदि अब प्रमाद करें तो हमारी बड़ी भारी मूर्खता है। ऐसे ही मूर्खोंके लिये भगवान् कहते हैं—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥

(गीता १६। १९)

'ऐसे उन द्वेष करनेवाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही डालता हूँ।'

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। २०)

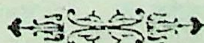
'हे अर्जुन! जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त वे मूढ पुरुष मुझको न प्राप्त होकर उससे भी अति नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं। अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।'

पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमोंके लिये आसुरी योनि और नरकोंका विधान तो ठीक ही है। परंतु भगवान्ने जो 'मुझे न प्राप्त होकर' कहा, इसका क्या रहस्य है? ऐसे पापियोंके लिये भगवत्प्राप्तिकी बात ही कैसी? सरकारका यह कहना तो ठीक है, अमुक चोर है, बदमाश है, उसे बार-बार जेलमें और कालेपानीमें भेजना है, 'परंतु उसे राज्य न देकर जेलमें भेजना है' इस कथनका क्या अभिप्राय है? बात यह है कि भगवान् जब किसी जीवको मानव-शरीरमें भेजते हैं तो उसे मुक्तिका अधिकार देकर ही भेजते हैं। और वह मुक्तिका अधिकार प्राप्त करके आया हुआ जीव जब भगवान्को भूलकर—अपने जन्मसिद्ध अधिकारकी उपेक्षा कर पाप करता है और पुनः नरकोंमें जाने योग्य बन जाता है, तब मानो भगवान् खेद प्रकट करते हुए-से कहते हैं कि देखो, इसको मैंने 'अपनी प्राप्तिका अधिकार देकर भेजा था, परंतु आज इसे नरकमें भेजनेकी व्यवस्था करनी पड़ती है, इससे बढ़कर खेदकी बात और क्या होगी?'

जैसे किसी राजाके देहावसान हो जानेपर उसके पुत्रका राज्यपर अधिकार होता है, परंतु उस समय वह नाबालिग होनेके कारण राज्यशासनके योग्य नहीं समझा जाता। सरकार राज्यकी समस्त व्यवस्था करती है और राजकुमारके बालिग होनेपर उसे सारे अधिकार सौंप देती है, परंतु वह यदि अयोग्य निकलता है और बुरी संगतिमें पड़कर ऐसे कर्म कर बैठता है, जिनके फलस्वरूप, पिताका राज्य होनेके कारण उसपर जन्मसिद्ध स्वत्व होनेपर भी वह राज्याधिकारसे वञ्चित कर दिया जाता है, इतना ही नहीं प्रत्युत उसे और भी दण्ड भोग करना पड़ता है। और उसे दण्ड देते समय जैसे सरकार पश्चात्ताप करती है, ठीक वैसी ही बात मनुष्योंके लिये भी है। मनुष्यको परमात्माकी प्राप्तिका जन्मसिद्ध अधिकार है तथापि अपनी अयोग्यता और विपरीताचरणके कारण उसे अपने अधिकारसे वञ्चित रहकर उलटा दण्ड भोग करना पड़ता है। इससे अधिक उसका दुर्भाग्य और क्या होगा? इसीलिये भगवान्ने उपर्युक्त श्लोकमें 'मुझे न प्राप्त होकर नीच गतिको प्राप्त होते हैं', ऐसा कहा है।

वस्तुतः यह हमारे लिये बड़े ही परिताप और लज्जाकी बात है कि इस प्रकार हम दयालु भगवान्की दयाका तिरस्कारकर अपने मानव-जीवनको व्यर्थ खो रहे हैं। यही मानव-जीवनकी सबसे बड़ी विफलता है और यही मनुष्यकी सबसे बड़ी भूल है। भगवान् कहते हैं—जल्दी चेतो—कालका भरोसा करके विषयभोगोंमें जरा भी मत फँसो। यह मत समझो कि शरीर सदा रहेगा, यह भी मत समझो कि मुझे भूलकर तुम इसमें कहीं भी सुखकी तनिक छाया भी पा सकोगे। यह मनुष्य-शरीर तो मैंने तुम्हें विशेष दया करके दिया है, अपनी ओर खींचकर परमानन्दरूप परमधाममें ले जानेके लिये। यह बड़ा ही दुर्लभ है। परंतु यह है अनित्य, क्षणभंगुर और जो मुझको भूल जाता है उसके लिये नितान्त सुखरहित भी। इसे प्राप्तकर तो बस, निरन्तर प्रेमपूर्वक मेरा भजन ही करो। तभी तुम जीवनके परम लक्ष्यरूप मुझको प्राप्त करके धन्य हो सकोगे!

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥'



धर्मकी सार्वभौमिकता

(पण्डित श्रीगोपालचन्द्रजी चक्रवर्ती, वेदान्तशास्त्री)

हमारे शास्त्रोंमें सर्वत्र 'धर्म' शब्दका ही प्रयोग हुआ है। उसके साथ कोई विशेषण नहीं दिया गया है। विशेषण देनेसे असीम वस्तु ससीम हो जाती है। जैसे 'फूल' कहनेसे विश्वब्रह्माण्डके सारे फूल समझे जाते हैं, परंतु 'लाल फूल' या 'सफेद फूल' कहनेसे फूलोंका एक सीमित स्वरूप ही मालूम होता है, उसी प्रकार 'धर्म' कहनेसे संसारके सारे धर्मोंका उसमें अन्तर्भाव हो जाता है और 'बौद्धधर्म', 'जैनधर्म', 'हिन्दूधर्म' आदि कहनेसे हमारे शास्त्रोक्त सार्वभौम 'धर्म' के एक अंशका ही बोध होता है। यद्यपि मनुस्मृति, महाभारत आदि ग्रन्थोंमें—'**एष धर्मः सनातनः**' कहकर कहीं-कहीं 'धर्म' शब्दके साथ 'सनातन' शब्द जोड़ दिया है, परंतु उस सनातन शब्दसे 'धर्म' सीमित नहीं हुआ है, बल्कि उससे 'धर्म' का महत्त्व ही बढ़ गया है, क्योंकि उसका अर्थ है कि 'यही धर्म सनातन अर्थात् अनादि है।'

हमारा सार्वभौम धर्म विश्वब्रह्माण्डमें सर्वत्र व्यापक है।'धृञ्' धातुसे बननेके कारण 'धर्म' शब्दका अर्थ है—'जो सब वस्तुओंको धारण करता है' अथवा 'जिससे संसारकी सारी वस्तुएँ धृत या रक्षित होती हैं।' नारायण-उपनिषद्में लिखा है—

'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा'

'धर्म ही समस्त संसारकी स्थितिका मूल है।' महाभारतमें महर्षि वेदव्यासजीने लिखा है—

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥

'धारण करता है, इसलिये इसका नाम धर्म है, धर्म ही प्रजाओंको धारण करता है, जिसमें धारण करनेकी शक्ति हो वही धर्म है।' तन्त्रशास्त्रमें भी लिखा है—

या बिभर्ति जगत्सर्वमीश्वरेच्छा ह्यलौकिकी।
सैव धर्मो हि सुभगे नेह कश्चन संशयः॥

'अर्थात् ईश्वरकी इच्छारूप जो अलौकिक महाशक्ति समस्त जगत्को धारण करती है, वही 'धर्म' है।

ईश्वर ब्रह्माण्डमें सर्वत्र व्यापक हैं, सुतरां उनकी शक्ति भी सभी पदार्थोंमें व्याप्त है। उस शक्तिसे ही आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी—ये पाँच भूत तथा इनसे बने सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष, लता, नदी, पर्वत आदि सभी पदार्थ अपनी-अपनी अवस्थामें स्थित हैं। इसको अंग्रेजीमें प्रापर्टी (Property) भी कहते हैं। यह शक्ति न रहे तो क्षणभरमें संसारका प्रलय हो जा सकता है। पृथ्वीमें यह धारिका शक्ति न रहती तो क्षणभरमें यह गलकर जल हो जाती या हवा होकर उड़ जाती। इसी प्रकार 'धर्म' की इस धारिका शक्तिके न रहनेसे संसारकी कोई वस्तु या कोई जीव घड़ीभर भी अपनी अवस्थामें स्थित नहीं रह सकता। ईश्वरकी इच्छारूप इस धर्म-शक्तिके शासनसे—

भीषास्मादग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

(कठोपनिषद्)

'इसके भयसे अग्नि जलाती है, सूर्य ताप देता है और इसी शक्तिके भयसे इन्द्र, वायु और यम अपना-अपना कार्य करनेमें बाध्य होते हैं।'

जिस प्रकार राजाकी शक्ति उसके राज्यभरमें व्याप्त रहती है, प्रधान शासकसे लेकर एक मामूली सिपाहीके भीतर भी वह शक्ति काम करती है। यहाँतक कि एक साधारण गृहस्थके घरमें भी उस व्यापक राजशक्तिके भयसे चोर घुसनेका साहस नहीं करता। उसी प्रकार ईश्वरेच्छारूपिणी इस अलौकिक धर्मशक्तिके शासनसे अनन्तकोटि विश्व-ब्रह्माण्ड धृत और रक्षित होते हैं।

यही हमारे शास्त्रोक्त धर्मका सार्वभौम लक्षण है। संसारके सभी धर्मोंका, धर्मके इस विराट् लक्षणमें अन्तर्भाव हो जाता है। किसी भी दूसरे धर्ममें 'धर्म' का ऐसा महान् लक्षण नहीं पाया जाता। परंतु इस लक्षणमें धर्मके विषयमें हम मनुष्योंका कोई कर्तव्य-निर्देश नहीं होता, इसलिये शास्त्रोंमें धर्मका दूसरा लक्षण यह बतलाया है कि—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

(वैशेषिकदर्शन)

'जिसके द्वारा इहलोक या परलोकमें उन्नति और मोक्षकी प्राप्ति हो उसका नाम धर्म है।' महर्षि वेदव्यासजीने भी

महाभारतमें लिखा है—

उन्नतिं निखिला जीवा धर्मेणैव क्रमादिह।
विदधानाः सावधाना लभन्तेऽन्ते परं पदम्॥

'धर्मके द्वारा ही समस्त जीव क्रमोन्नति-लाभ करते हुए अन्तमें परम पदको प्राप्त करते हैं। सारे जीव प्रकृतिके निम्नतम स्तरमें उत्पन्न होकर ईश्वरकी शक्तिके प्रभावसे धीरे-धीरे वृद्धि और उन्नतिको प्राप्त करके अन्तमें परब्रह्ममें लीन होकर मुक्त हो जाते हैं।'

मूल प्रकृतिमें सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण समपरिमाणमें रहते हैं। जब उसमें रजोगुणकी वृद्धि होती है तभी सृष्टि होने लगती है, परंतु रजोगुणकी सृष्टि जड़ सृष्टि है, उसमें केवल पञ्चभूत ही उत्पन्न होते हैं। सत्त्वगुण प्रकाशशील है, इसलिये उसमें चेतन परमात्माका प्रतिविम्ब ग्रहण करनेकी शक्ति है। प्रकृतिमें सत्त्वगुणका प्राधान्य होनेसे जीवकी सृष्टि होने लगती है। सत्त्वगुणमें परमात्माका प्रतिविम्ब पड़नेसे उसकी 'जीव' संज्ञा होती है और उसमें क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्तिका विकास होता है। पहले यह सत्त्वगुण बहुत ही मलिन अवस्थामें रहता है, जैसे—वृक्ष, लता, पर्वत आदिमें, ये उद्भिज्ज हैं। पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होनेके कारण ही उनका नाम उद्भिज्ज पड़ा है। इस योनिमें जीव बीस लाख बार उत्पन्न होकर 'स्वेदज' योनिमें आ जाता है। जो स्वेद या पसीनेसे क्रिमि, कीट, मच्छर आदि उत्पन्न होते हैं, उन्हें स्वेदज कहते हैं। इस योनिमें ग्यारह लाख बार उत्पन्न होकर जीव पक्षी, साँप, मछली आदिकी 'अण्डज' योनिमें आ जाता है। अण्डेसे उत्पन्न होनेके कारण ही इनका नाम अण्डज है। इन योनियोंमें उन्नीस लाख बार उत्पन्न होकर जीव 'जरायुज'—पशुयोनिमें आ जाता है। जरायुसे उत्पन्न होनेके कारण इनका नाम जरायुज है। तीस लाख बार क्रमशः उन्नततर इन 'जरायुज' योनियोंमें उत्पन्न होता हुआ जीव वानरयोनिमें आ जाता है। चार लाख बार इस योनिमें जन्म होनेके बाद जीव मनुष्ययोनिमें आकर उत्पन्न होता है। मनुष्योंमें भी असभ्य, अस्पृश्य, शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण आदि क्रमसे उन्नततर शरीरोंमें उत्पन्न होता हुआ जीव मुक्तिका अधिकारी होता है। जीवकी क्रमोन्नतिका यह सिलसिला धर्मशक्तिके प्रभावसे ही अक्षुण्ण रहता है।

हमारे शास्त्रोक्त धर्मका यह दूसरा लक्षण भी संसारके समस्त जीवोंमें व्यापक है। कोई भी धर्म इससे पृथक् नहीं है, परंतु इस लक्षणसे भी धर्मके सम्बन्धमें हमारा कर्तव्य क्या है, यह निश्चित नहीं हुआ। इस कारण धर्मका यह तीसरा लक्षण करना पड़ा कि जिन कर्मोंसे धर्मकी इस उन्नतिशील क्रियामें सहायता हो, क्रमशः सत्त्वगुणकी वृद्धि हो और किसी दूसरे धर्ममें बाधा न पहुँचे वही धर्म है। हमारे शास्त्रोंमें यज्ञ, होम, दान, तप, संध्यावन्दन, परोपकार, अतिथिसेवा आदि जिन कर्मोंका विधान है, वे सभी धर्मकी इस उन्नतिशील क्रियाके सहायक हैं। एक बालक बढ़ रहा है। भोजन-पान देकर उसकी उन्नतिमें सहायता पहुँचाना धर्म है। दूसरी ओर हत्या करके उसकी उन्नतिमें बाधा पहुँचाना अधर्म या पाप है। इसी प्रकार हमारे शास्त्रोंमें जिन-जिन कर्मोंका विधान है, सभीसे जीवोंकी उन्नतिमें सहायता पहुँचती है।

धर्म क्या है—इसका निष्कर्ष महर्षि वेदव्यासजीने पितामह भीष्मदेवके मुखसे कहलाया था।

कुरुक्षेत्रके महायुद्धमें पितामह भीष्म शरशय्यापर लेटे हुए थे। युधिष्ठिर आदि पाण्डव उनसे अन्तिम उपदेश लेनेके लिये उनके पास पहुँचे। श्रीकृष्ण, द्रौपदी आदि भी साथमें थे। राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति आदि विषयके उपदेश सुननेके पश्चात् युधिष्ठिरने धर्मका संक्षिप्त लक्षण पूछा। उसके उत्तरमें महात्मा भीष्मदेवने कहा—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

'अपनेको बुरा लगे ऐसा बर्ताव दूसरेसे नहीं करना चाहिये। यही धर्मका सारसर्वस्व है।'

भीष्मदेवका यह उपदेश सुना तो सभीने था, पर उसे कार्यरूपमें परिणत किया था केवल द्रौपदीने।

कुरुक्षेत्र-युद्धके अन्तमें सारे कौरवोंके मारे जानेके अनन्तर राजा दुर्योधन ह्रदमें जा छिपे थे। गुरु द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा खोजते-ढूँढ़ते उनके पास पहुँच गये। उन्होंने राजाको सान्त्वना देते हुए कहा—'मित्र ! तुम शोक न करो। तुम्हारे निन्यानबे भाई युद्धमें मारे गये हैं, उसके बदले आज रातको मैं पाँचों पाण्डवोंके सिर काटकर तुम्हारे सामने ला दूँगा।'

रात्रिको अश्वत्थामा पाण्डवोंके शिविरमें पहुँचे। पाँचों

पाण्डव जहाँ नित्य सोते थे, उस दिन रात्रिको वे वहाँ नहीं थे। वहाँ द्रौपदीके पाँच पुत्र सोये हुए थे। अँधेरेमें अश्वत्थामा पाँच पाण्डव समझकर उन्हींके सिर काट ले गये। राजा दुर्योधनके पास पहुँचनेपर उन्होंने अँधेरेमें एक-एक सिर हाथमें लेकर दबाया। बालकोंके सिर महाबली दुर्योधनके हाथके दबावसे टूट गये। अन्तमें उन्होंने भीमका सिर माँगा। दबावसे वह भी टूट गया। तब उनके मनमें संदेह हुआ कि जिस महाबली भीमका सिर अस्सी मन वजनकी लोहेकी गदाके प्रहारसे न टूटा, वह आज हाथके दबावसे टूट गया! राजाको निश्चय हो गया कि ये पाण्डवोंके सिर नहीं हैं, बल्कि उनके पुत्रोंके सिर हैं। तब उन्होंने विलाप करते हुए कहा—'हाय! हाय! गुरुपुत्र! तुमने यह क्या किया? मेरे वंशका तो नाश हो ही गया है। अब तुमने पाण्डवोंके कुलका भी नाश कर दिया। तुम हमारे सामनेसे हट जाओ।'

प्रातःकाल पुत्रोंके सिर कटे धड़ोंको देखकर द्रौपदी रोने लगी। पाँचों पाण्डव वहाँ आ पहुँचे। पुत्रोंकी मृत्युका कारण कोई भी न समझ सके। श्रीकृष्णने बताया कि 'कौरव-पक्षमें केवल दुर्योधन और अश्वत्थामा ही जीवित हैं। दुर्योधन भाग गया है, इस कारण उसका मित्र अश्वत्थामा ही उसे प्रसन्न करनेके लिये पाण्डव समझकर तुम्हारे पुत्रोंके सिर काट ले गये हैं।'

अपने ही गुरुके पुत्र अश्वत्थामाके द्वारा अपने सारे पुत्रोंकी हत्याकी बात सुनकर अर्जुन गरज उठे—'द्रौपदी! तुम मत रोओ, अश्वत्थामा स्वर्ग, मर्त्य या पाताल—त्रिलोकमें जहाँ कहीं होगा, मैं उसे पकड़ लाऊँगा और तुम्हारे सामने लाकर उसका सिर काट डालूँगा। उसके गर्म खूनसे नहाकर तुम अपने हृदयको शान्त कर लेना।'

श्रीकृष्णने मुसकराकर कहा—'चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।'

अर्जुनने कहा—'आपके चलनेकी कोई जरूरत नहीं है। अश्वत्थामा कोई ऐसा बड़ा वीर नहीं है कि मैं अकेला उसे पकड़ न ला सकूँ।'

श्रीकृष्ण राजी न हुए। वे अर्जुनके साथ ही चल दिये। अर्जुनने द्वैपायनह्रदके पास जाकर अश्वत्थामाको पकड़ लिया। श्रीकृष्णने कहा—'बस, अब झट इसका सिर काट डालो।'

अर्जुनने कहा—'नहीं, मैंने प्रतिज्ञा की है कि द्रौपदीके सामने ले जाकर इसका सिर काटूँगा।'

श्रीकृष्णने हँसते हुए कहा—'तब तो तुम काट चुके।'

अर्जुनने उनका कहना न माना। वे अश्वत्थामाको पकड़कर द्रौपदीके सामने ले आये। अपनी आसन्न-मृत्यु समझकर अश्वत्थामा रो रहे थे, अर्जुनने अश्वत्थामाके सिरके बाल अपने बायें हाथसे पकड़ रखे थे और उनके दाहिने हाथमें नंगी तलवार थी। अश्वत्थामाको देखते ही द्रौपदीके मनमें अपने पुत्रोंका शोक उमड़ आया। उन्होंने अर्जुनसे कहा—

मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः॥
मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता।

(श्रीमद्भा० १।७।४३, ४७)

'छोड़ दो, इसे छोड़ दो, ब्राह्मण पूज्य हैं, मैं जिस प्रकार अपने पुत्रोंके शोकसे रो रही हूँ, वैसे इनकी माता पतिपरायणा गौतमी न रोयें।'

अन्तमें अर्जुनको उन्हें छोड़ ही देना पड़ा। द्रौपदीने **'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'**—धर्मके इस सार उपदेशको अपने जीवनमें चरितार्थ कर दिखाया।

यदि हम सब भी धर्मके इस एक उपदेशको प्रतिदिनके व्यवहारमें लायें तो संसार स्वर्ग हो जाय।

आश्चर्य

भगवान्‌की भगवत्तापर, जो मनुष्यको उसकी बुरी आदतों तथा उनके परिणामोंसे सर्वथा मुक्त कर देती है, उन्हीं लोगोंको आश्चर्य होता है जिनमें आध्यात्मिक बुद्धि नहीं है। जो लोग अपने भीतर ईश्वरीय प्रकाशको अभिव्यक्त करनेकी सच्ची चेष्टा कर रहे हैं और उसका पथप्रदर्शकके रूपमें उपयोग करते हैं, वे यह जानते हैं कि जो श्रद्धालु हैं तथा अपनी श्रद्धाको कार्यान्वित करनेमें लगे हुए हैं, उनके लिये सब कुछ सम्भव है।

जीवकी तृप्ति कैसे हो ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जीव सदा ही अतृप्त है। साधारण कीट-पतंगसे लेकर बड़े-बड़े सम्राट्‌तक सभी किसी-न-किसी अभावका अनुभव कर सदा दुखी रहते हैं। कोई कितनी भी सांसारिक सम्पत्तिका या कितने ही उच्च पदका अधिकारी क्यों न हो, अपनी स्थितिसे संतुष्ट नहीं है, उसके हृदयमें किसी वस्तुकी कमी सदा खटकती है—वह कुछ और चाहता है। बड़े-बड़े देवताओंकी भी यही दशा सुनी जाती है।

जहाँ अतृप्ति है, अभावकी वेदना है, वहीं चित्त चञ्चल और अशान्त है, जिसका चित्त अशान्त है, वही दुखी है—**'अशान्तस्य कुतः सुखम्।'**

यह अतृप्ति तबतक नहीं मिट सकती, जबतक कि जीव किसी ऐसी परम वस्तुको न प्राप्त कर ले, जिसकी सत्तासे समस्त अभावोंका सर्वथा अभाव हो जाता हो—जो पूर्ण हो। विवेकबुद्धि बतलाती है कि ऐसी परम वस्तु एक परमात्मा ही है, जो सदा एकरस रहता है, उसके सिवा अन्य सभी वस्तुएँ किसी-न-किसी अभावसे युक्त—परिणामविनाशी हैं और प्रतिक्षण विनाशकी ओर अग्रसर हो रही हैं। ऐसी विनाशशील अपूर्ण वस्तुओंसे जीवका पूर्णकाम होना कभी सम्भव नहीं। इसीलिये जीव नित्य अतृप्त है और वह संसारकी सभी वस्तुओंको 'यह भी वह नहीं है', 'इसमें भी वह नहीं है' यों 'नेति-नेति' कहता हुआ उनमें अपनी इच्छित वस्तु न पाकर स्वभावसे ही उस अभावरहित नित्य वस्तुकी ओर अग्रसर हो रहा है।

इतना होनेपर भी कभी-कभी भ्रमवश जीव संसारी पदार्थोंमें सुखकी कल्पना कर अपने लक्ष्यको भूल जाता है। ऐसे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं जो नचिकेता और प्रह्लादकी भाँति जगत्‌के समस्त प्रलोभनोंको पददलित कर पूर्णकी प्राप्तिके लिये बद्धपरिकर हो चुके हों। हजारोंमेंसे कोई एक इस प्रकार प्रयत्न करना चाहता है, वैसे हजारोंमें कोई एक प्रयत्न करता है और प्रयत्न करनेवाले लोगोंमें भी कोई बिरला ही शेषतक अपने लक्ष्यपर स्थिर रह सकता है। अधिकांश लोग तो अपने मतको ही सर्वश्रेष्ठ मानकर दूसरोंकी निन्दा करने लगते हैं और दलबंदीमें पड़कर लक्ष्यभ्रष्ट हो अपने ईश्वरका आप ही अपमान कर बैठते हैं। अपने साधन-पथको सर्वश्रेष्ठ समझना बुरा नहीं है। साधकके लिये तो यह आवश्यक भी है, परंतु दूसरेको हीन समझना बहुत बुरा है। आज दुनियामें जो इतने अधिक मत-मतान्तर और उनमें परस्पर विवाद, द्वेष, द्रोह वर्तमान हैं, इसका प्रधान कारण यही है। नहीं तो जब ईश्वर एक है, वह एक ही सृष्टिका रचयिता है, सम्पूर्ण जगत् उसीसे उत्पन्न है, वही एक सबका पालन करता है, फिर आपसमें लड़नेका क्या कारण है? एक ही पिताकी संतान होकर एक दूसरेको हीन बतलानेका क्या कारण है? कारण यही है कि हमने अपने अज्ञानसे उस एककी जगह अनेक ईश्वरोंकी सृष्टि कर अपने ईश्वरको छोटा बना लिया है।

हिन्दुओंमे शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, वेदान्ती, बौद्ध, जैन, सिख आदि अनेक मत हैं। इनमें भी भिन्न-भिन्न आचार्योंके अनुसार भिन्न-भिन्न अनेक सम्प्रदाय हैं। हिन्दुओंके सिवा मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी आदि अनेक मत हैं। प्रत्यक्ष या परोक्ष-भावसे प्रायः सभी ईश्वरको मानते हैं। देश, काल, प्रकृति, रुचि और अधिकार आदिके भेदसे मतोंमें, उनके बाहरी व्यवहारोंमें तथा उनकी उपासनापद्धतिमें भेद रहना आश्चर्यकी बात नहीं है। यहाँ हमें किसी मतसे विरोध नहीं है, सभी मत रहें, अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार चलते रहें, परंतु यह विवेक सबमें सर्वदा जाग्रत् रहना चाहिये कि हम सब भिन्न-भिन्न साधनोंसे उस एक ही परम साध्यकी ओर बढ़ रहे हैं, जिसको वैष्णव श्रीविष्णु या श्रीराम, श्रीकृष्ण कहते हैं, शैव शिव, शाक्त दुर्गा, गाणपत्य गणेश, सौर सूर्य, वेदान्ती ब्रह्म, मुसलमान अल्लाह और ईसाई अंग्रेजीमें गॉड कहते हैं। उस एक ही चरम लक्ष्य स्थानतक पहुँचनेके भिन्न-भिन्न अनेक मार्ग हैं, जो रास्तेकी सुगमता, दुर्गमता और अपनी-अपनी गतिके अनुसार आगे-पीछे एक ही जगह पहुँचा देते हैं।

ऐसा न मानकर अपने-अपने ईश्वरको अलग माननेसे एक की जगह ईश्वर अनेक हो जाते हैं, जिससे प्रत्येक ईश्वरकी सीमा परिमित हो जाती है। मान लीजिये, एक साधकने धनुर्बाणधारी भगवान् श्रीरामको ईश्वर माना है, दूसरा वैष्णव बालरूप मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरको ईश्वर मानता है, तीसरे

मुसलमानके मतसे ईश्वरका रूप मुसलमानके सदृश दाढ़ी-वदनधारी है, चौथे यूरोपीय सज्जन ईश्वरको हैट-कोट-बूटधारी समझते हैं। ये चारों ही ईश्वरको मानते हैं, उसकी भक्ति करते हैं और उसे सर्वश्रेष्ठ समझकर उपासना करते हैं। क्या ये चारों ही वास्तवमें एक ही ईश्वरकी भक्ति नहीं करते ? जब ईश्वर एक है तो भक्ति उस एकहीकी होती है, परंतु दूसरोंके ईश्वरको अपने ही ईश्वरका एक और रूप न माननेके कारण वह तत्त्वज्ञानशून्य पूजा सर्वव्यापी ईश्वरकी न होकर सीमाबद्ध अल्प-स्थलव्यापीकी ही होती है। दूसरोंके ईश्वरको अपने ही ईश्वरका स्वरूप न माननेसे अपना ईश्वर अपनी ही मान्यतातक परिमित रह जाता है, क्योंकि दूसरे तो हमारे ईश्वरको मानते नहीं। परिणाममें हमारी ही अल्पज्ञतासे हम अपने ईश्वरको छोटेसे घेरेमें बंदकर क्षुद्र बना देते हैं, जो एक तामसी कार्य ही होता है। धनुर्बाणधारी श्रीरामके सच्चे उपासकको अपने भावसे अपने इष्ट रूपकी उपासना करते हुए भी दूसरोंके द्वारा दूसरे रूपकी समानता होते देखकर यह समझकर प्रसन्न होना चाहिये कि मेरे भगवान् श्रीरामकी कैसी अपार महिमा है कि जो भक्तकी भावनाके अनुसार कहीं श्यामसुन्दर गोपाल बन जाते हैं तो कहीं जटाजूटधारी शिव बन जाते हैं, कहीं आकाशवत् सर्वव्यापी निरवयव बन जाते हैं तो कहीं दाढ़ी या हैट-कोटधारी बन जाते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य नाम-रूपोंके उपासकोंको भी मानना चाहिये। वास्तवमें बात भी यही है।

एक साध्वी पतिव्रता ब्राह्मणीके स्वामी बड़े विद्वान् और गुणी पुरुष थे। विद्वान्, शुद्ध और सदाचारी होनेके कारण नगरके अनेक श्रद्धालु लोगोंने उनसे दीक्षा ग्रहण की थी। उनकी नेकचलनी और न्यायपरायणतासे संतुष्ट होकर सरकारने उन्हें मैजिस्ट्रेटके अधिकार दे दिये थे। वे बड़े अच्छे कथावाचक थे, प्रतिदिन रातको उनकी कथा होती थी, जिसमें हजारों नर-नारी सुनने आया करते थे। गरीब किसानों और दीन-दुखियोंके साथ वे सच्ची सहानुभूति रखते थे, इससे हजारों गरीब उन्हें अपना रक्षक और पिता-सदृश समझने लगे थे। गाँव, घर, परिवार सबसे अच्छा बर्ताव होनेके कारण सभी अपने-अपने सम्बन्धके अनुसार उनको सम्बोधन कर उनका सम्मान करते थे। साध्वी स्त्री पतिकी एकान्तभावसे सदा सेवा किया करती थी और शिष्योंके द्वारा गुरुभावसे, सरकारी कर्मचारियोंके द्वारा उच्च अधिकारीभावसे, श्रोताओंके द्वारा पण्डितभावसे, गरीबोंके द्वारा रक्षकभावसे और घर-परिवारके लोगोंद्वारा सम्बन्धानुसार आत्मीय भावसे, यों भिन्न-भिन्न लोगोंद्वारा अपनी-अपनी भावनाके अनुसार भिन्न-भिन्न भावोंसे अपने ही प्रियतम पतिको पूजित होते देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ करती और पतिकी गुणावलीपर मुग्ध होकर उसमें अपना गौरव समझती। किसी भी भावसे पतिका सम्मान करनेवालेको वह अपने पतिका प्रेमी समझकर सबसे प्रेम किया करती। इसी प्रकार साधकको भी ईश्वरके सभी रूपोंको केवल अपने ही आराध्य इष्टदेवकी सच्ची प्रतिमूर्ति समझकर अपने इष्ट रूपकी अपनी भावनाके अनुसार ही उपासना करते हुए भी सबका सम्मान और सबसे प्रेम करना चाहिये।

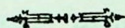
जबतक यह समझ नहीं होती, तभीतक भ्रम है, झगड़ा है, द्वेष-मोह और वैर-विषाद है। इस ज्ञानकी उपलब्धि होते ही सारे झगड़े आप-से-आप निपट जाते हैं। सारे गहनोंका अधिष्ठान सोना एक है, केवल गहनोंके नाम, रूप और व्यवहारमें भेद है। बर्तनोंका अधिष्ठान मिट्टी एक है, नाम-रूपकी उपाधिसे व्यवहारमें भेद है। इसी प्रकार ईश्वर एक है, नाम-रूपके भेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार सभी एक तत्त्व है। वाष्प ही जलकी बूँद बनती है, फिर वह जल ही वाष्प बनकर निराधार आकाशमें रम जाता है।

जैसे एक ही व्यापक निराकार अग्नि वस्तुभेदसे भिन्न-भिन्न आकारोंमें व्यक्त होती है, उसी प्रकार एक ही अव्यक्तमूर्ति सच्चिदानन्दघन परमात्मासे समस्त जगत् परिपूर्ण होनेपर भी अपनी-अपनी भावनाके अनुसार वह सबको भिन्न-भिन्न रूपोंमें दीखता है। भगवान्‌का कोई भी रूप मिथ्या नहीं है। नाम-रूपसे अतीत परमात्मा सभी नाम-रूपोंमें नित्य सुप्रतिष्ठित है। सूत्रमें सूत्रकी मणियोंकी भाँति सबमें वही एक ओतप्रोत है, उसके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। भक्त उसके जिस रूपमें श्रद्धा करता है, वह उसे अपने उसी रूपमें पूर्णता प्राप्त करानेके लिये—अपना पूर्ण, सर्वथा अभावरहित, निरावरण मुखकमल-दर्शन करानेके लिये उसी रूपमें उसकी श्रद्धा अचल कर देता है। भक्तके लाभके लिये ही ऐसा होता है।

खेदकी बात तो यही है कि हमलोग केवल बाहरी

बातोंको ही तत्त्व समझकर उन्हींमें लगे रहते हैं, अंदर प्रवेश ही नहीं करना चाहते। इसीसे ईश्वरके नामपर जगत्‌में लड़ाइयाँ होती हैं। किसी एक सम्प्रदायविशेषके नाम-रूपको ही सब कुछ मानकर अन्य समस्त सम्प्रदायोंके साधनोंके नाम-रूपमें तुच्छ बुद्धिकर, सम्पूर्ण साधनोंके परम तत्त्व, प्रायः सभी सम्प्रदायोंके आदि आचार्योंके चरमलक्ष्य एक शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माको भुलाकर, हम 'धनमानमदान्वित' और 'मोहजालसमावृत' हो, अहंकार, बल, दर्प, काम-क्रोधादिका आश्रय लेकर सर्वभूतस्थित अन्तर्यामी परमात्मासे द्वेष करने लगते हैं, इसीलिये हम उस अभावरहित सच्चे सुखसे वञ्चित रहकर बारंबार दुःख-दावानलमें दग्ध होते हुए मृत्युका शिकार बनते रहते हैं। यदि हम इस तत्त्वको समझ लें कि 'सबके अंदर एक ही ईश्वर है, सब उस एकसे ही उत्पन्न हैं और उस एककी ओर ही अविच्छिन्न गतिसे अग्रसर हो रहे हैं' तो फिर किसीका किसीसे कोई विरोध न रहे और अपने साधनमें सब सुखी रहें।

एक ही ईश्वरकी संतान होकर एक दूसरेको नष्ट-भ्रष्ट करनेकी चेष्टा हमारे अज्ञानको ही प्रकट करती है। भारतवर्षके अध्यात्मवादमें एकत्वका परम तत्त्व निहित है। 'समस्त अनेकतामें एकताका अनुभव करना ही भारतीय धर्मका ध्येय है।' भारतवासियोंको स्वयं अपने ध्येयकी ओर अग्रसर होकर जगत्‌के सामने क्रियारूपमें यह आदर्श रखना चाहिये, जिससे जगत् उस परम शान्ति और सुखके पथपर आरूढ़ हो, उस नित्य-तृप्तिकर सुधाका आस्वादन कर सुखी हो सके!



परिस्थितिके सदुपयोगसे प्रभुकी प्राप्ति

प्रभु-विश्वासीके लिये अनुकूलता (अनुकूल परिस्थिति या सुख) और प्रतिकूलता (प्रतिकूल परिस्थिति या दुःख) प्रभुके द्वारा भेजा हुआ मङ्गल-प्रसाद है, सुख-दुःख नहीं। साधकके लिये अनुकूलता और प्रतिकूलता साधन-सामग्री है। अनुकूलताके सदुपयोगसे जीवनके जिस उच्चतम सत्यकी प्राप्ति हो सकती है, प्रतिकूलताके सदुपयोगसे भी उसी उच्चतम सत्यकी प्राप्ति होती है। प्रतिकूलताके दुरुपयोगसे जो दुर्गति होती है, अनुकूलताके दुरुपयोगसे भी ठीक वही दुर्गति होती है। इसलिये सांसारिक दृष्टिसे अनुकूलताको प्राप्त सुखी कहा जानेवाला व्यक्ति सौभाग्यशाली नहीं है और सांसारिक दृष्टिसे प्रतिकूलताको प्राप्त दुःखी कहा जानेवाला व्यक्ति दुर्भाग्यशाली नहीं है। न सुखी सौभाग्यशाली है और न दुःखी दुर्भाग्यशाली। दुर्भाग्यशाली वह है जो आये हुए सुख-दुःखका दुरुपयोग करता है और सौभाग्यशाली वह है जो आये हुए सुख-दुःखका सदुपयोग करता है। सुख (अनुकूलता) में सेवा करना और दुःख (प्रतिकूलता) में सुखकी इच्छाका त्याग करना सुख-दुःखका सदुपयोग है। सुखमें हर्षित होकर सुखकी दासतामें आबद्ध हो जाना और दुःखमें दुःखी, चिन्तित, परेशान तथा हैरान होकर दुःखके भयमें आबद्ध हो जाना सुख-दुःखका दुरुपयोग है। सुखी व्यक्ति सेवाके माध्यमसे सुखासक्तिसे मुक्त होता है और दुःखी प्राप्त विवेकके प्रकाशमें बिना किसी माध्यमके केवल यह विचार करके कि—'सुख लेनेमें मैं सर्वथा पराधीन हूँ, सुख-भोग इस मानव-जीवनका लक्ष्य नहीं है, सुखके भोगीको अभी अथवा कभी विवश होकर भयंकर दुःख भोगना पड़ता है, और करोड़ों कामनाओंकी पूर्तिका सुख भी मुझे शान्ति, मुक्ति एवं भक्ति नहीं दे सकता, जो कि मेरी मौलिक माँग है'—सुखासक्तिसे मुक्त होता है। परिणाममें सुखी एवं दुःखी दोनों ही क्रमशः सेवा एवं त्यागके द्वारा सुखासक्ति (सुख भोगनेकी इच्छा या कामना) से मुक्त होकर प्रभुके पवित्र प्रेमसे अभिन्न होते हैं। प्रभु हम सभीको सुख-दुःखका सदुपयोग करनेकी सामर्थ्य प्रदान करें, इसी भावनाके साथ 'उनकी वस्तु उन्हें ही अर्पित है।'

प्रायः हम सुख (अनुकूल परिस्थिति) को अच्छा और दुःख (प्रतिकूल परिस्थिति) को बुरा समझते हैं। सुखको पसंद करते हैं और दुःखको नापसंद। सुख बनाये रखना चाहते हैं और दुःखको टालनेका भरसक प्रयास करते हैं। जीवनमें अनुकूलताकी दासता एवं प्रतिकूलताका भय रहता है। दासता एवं भयसे शक्ति एवं श्वास तीव्रगतिसे क्षीण होते हैं। ऐसा इसलिये होता है कि हम सुख-दुःखकी वास्तविकताको नहीं जानते। असलियत यह है कि दोनों ही आते हैं और दोनों आते हैं प्रभुके मङ्गलमय विधानसे। यह मालूम होनेपर कि सुख-दुःख दोनों ही साधनकी सामग्री हैं, साधक सदैवके लिये निश्चिन्त होकर शान्त, प्रसन्न, स्वस्थ एवं आनन्दित हो जाता है। (एक साधक)

सत्संगसे परमपदकी प्राप्ति

(श्रीबनवारीलालजी दुआ, आयुर्वेदाचार्य)

श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने लिखा है—

बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भवभंगा॥

अर्थात् मनुष्यको बड़े सौभाग्यसे सत्संगका सुअवसर प्राप्त होता है, जहाँ बिना ही कोई परिश्रम या प्रयत्नके प्राणी संसार-सागरको पार कर जाता है और संसार-लीला समाप्त होकर भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

अब यह सत्संग क्या है ? इसपर विचार करें। वास्तविक सत्संग तो भगवान्‌का संग ही है, जिस प्रकार अर्जुन और उद्धव आदिने भगवान् श्रीकृष्णसे तथा श्रीहनुमान्, सुग्रीव तथा लंकापति विभीषण आदिने भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराजसे किया था। इनके दर्शनका फल प्रत्यक्ष था, जैसे कि मानसमें श्रीरामजी महाराजने स्वयं अपने मुखसे कहा है—

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥

भगवान्‌के दर्शनोंका फल है कि जीव अपने सहज स्वरूप—स्व-स्वरूपोपलब्धि या ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है, जिससे जन्म-मरणके चक्रसे छूट जाता है।

दूसरा सत्संग ब्रह्मनिष्ठ श्रीसद्‌गुरुदेव, उच्चकोटिके संत-महात्माओंका तथा प्रभुप्रेमी उच्चकोटिके भक्तोंका है। इन महानुभावोंका सतत सत्संग करनेसे तथा उनके आदेशानुसार जीवन-यापन तथा साधन करनेसे मनुष्य ज्ञानवान्, भक्त, योगी तथा त्यागी महात्मा बन जाता है तथा अन्तमें मुक्ति-लाभ कर परमपदको प्राप्त कर लेता है।

तीसरा सत्संग, सत्संगी भाइयोंमें जहाँ हरिकथा, कीर्तन निरन्तर होते रहते हैं, वहाँ नित्य जाकर भगवान्‌की दिव्य कथा तथा कीर्तनका श्रवण करनेसे अगाध श्रद्धा-विश्वास जाग्रत् होकर भगवान्‌में अनन्य भक्ति हो जाती है। सतत भगवत्कथा-श्रवणसे भगवान् सुनने तथा कहनेवालेके हृदयमें बैठ जाते हैं और उनके हृदयमें आते ही ज्ञान-वैराग्यके साथ भक्ति भक्तके हृदयमें विराजमान हो जाती है, जिससे अन्तमें परमपदकी प्राप्ति हो जाती है। भक्तके हृदयमें विवेक उत्पन्न होनेसे उसे इस संसारसे लेकर ब्रह्मलोकतकके भोगोंसे पूर्ण वैराग्य हो जाता है तथा उसके पास दैवी-सम्पत्तिके गुण भी आ जाते हैं। वह भक्त काम, क्रोध, लोभ, राग तथा द्वेष त्याग देता है और अन्तमें परमपदका अधिकारी हो जाता है।

भगवान्‌की कृपासे ही सत्संगकी प्राप्ति होती है, जिससे विवेक प्राप्त होकर मोहरूपी अज्ञान नष्ट हो जाता है और भगवान्‌के चरणोंमें दृढ़ अनुराग हो जाता है। जैसा कि तुलसीदासजीने कहा है—

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

देवोंके देव महादेव भगवान् शंकर भी भगवान् श्रीरामके चरणोंकी अनपायिनी भक्ति तथा सत्संगका वर भगवान्‌से माँगते हैं—

बार बार बर माँगउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायिनी भगति सदा सतसंग॥

भगवान् श्रीराम अपने जीवनकालमें महर्षि वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि संतोंके संगमें वेद, इतिहास, पुराण आदि सद्‌ग्रन्थोंको सुनते रहे तथा अपने सत्संगद्वारा जनताका कल्याण करते रहे।

बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥

देवदुर्लभ मानव-तन पाकर भी जो मनुष्य सत्संग नहीं करता, वह अपना हीरा-सा जन्म कौड़ियोंके मूल्यमें वृथा गँवा देता है। मानव-तन बड़े भाग्यसे—भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे किसी-किसीको प्राप्त होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

जब मनुष्य सत्संगमें श्रीगीता, श्रीरामायण आदि सद्‌ग्रन्थोंको सुनता है तो उसका मन इन सद्‌ग्रन्थोंके स्वाध्याय, श्रवण-मननमें अनुरक्त हो जाता है। भगवान्‌की दिव्य वाणी श्रीगीताजीके विवेकपूर्वक पठन-पाठनसे मनुष्यको तत्त्वज्ञान हो जाता है, फिर वह अर्जुनकी भाँति कह उठता है—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।

स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥

'हे अच्युत ! आपकी कृपासे मेरा संदेह दूर हो गया है और मुझे आत्मस्मृति प्राप्त हुई है। मैं संदेहरहित स्थित हूँ और आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।' श्रीरामचरितमानसके नित्य श्रवण-पठन एवं मननका फल यह है कि उससे ज्ञान-वैराग्यसहित भगवान् श्रीरामके चरणोंमें दृढ़ भक्ति हो जाती है, जिससे वह जीव जन्म-मरणके चक्रसे छूटकर परमपदको प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार दूसरे सद्ग्रन्थों—श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंके पठन-पाठनसे मोह, अज्ञान दूर होकर भगवान्‌की अनपायिनी भक्तिसे भक्त परमपद प्राप्त कर लेता है। सत्संगकी महिमा अनिर्वचनीय है। जो नित्य सत्संग करता है, उसे आत्मज्योति प्राप्त होती है, जिससे वह परमपदका अधिकारी हो जाता है।

यह मनुष्य-शरीर निश्चय ही धर्म अर्थात् सत्कर्मोंके साधनके लिये ही है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी जड़ धर्म ही है।

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

'धर्मार्थकाममोक्षाणां धर्मो हि मूलम्।'

ब्रह्मज्ञानीद्वारा कोई कर्म नहीं होता। यदि प्रारब्धवश कोई कर्म बन पाता है तो वह शास्त्रानुसार सत्कर्म ही होता है। अधर्म—पापकर्म उनसे बन ही नहीं पाते। अपने कर्मानुसार प्राणी चौरासी लाख योनियोंमें भटकता रहता है। जब उसका पुण्य उदय होता है तो भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे उसे मानव-तनकी प्राप्ति होती है। जो प्राणी भगवान्‌का सतत भजन न करके यूँ ही मानव-तनको खो देते हैं, उन्हें फिर चौरासी लाख योनियोंमें भटकना पड़ता है। अतः मनुष्यमात्रका कर्तव्य है कि वह भगवान्‌की शरण होकर, उनका आश्रय लेकर भगवान्‌के सतत भजन, कीर्तन, ध्यानादिमें ही अधिक समय व्यतीत करे और अपने परम लक्ष्य भगवान्‌की प्राप्ति अथवा आत्मसाक्षात्कार कर परमपदको प्राप्त करे।

जब विवेकी पुरुषको ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुकी प्राप्ति हो जाती है तो वह उनकी सेवाद्वारा गुरुकृपा प्राप्त कर लेता है तथा उनके आदेशानुसार ध्यानमें लग जाता है। जब भगवान्‌की कृपा, सद्गुरुकी कृपा तथा सत्-शास्त्रोंकी कृपा होती है तो वह ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है और समस्त कामनाओंको त्याग कर ममतारहित, अहंकाररहित, स्पृहारहित हो जाता है और शान्तिको प्राप्त होता है। ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर वह मोहित नहीं होता। अन्तकालमें भी इस निष्ठामें स्थित रहकर ब्रह्मनिर्वाण—परमपदको प्राप्तकर कृतकृत्य हो जाता है।

कोई-कोई ब्रह्मभावको प्राप्त होकर सर्वदा प्रसन्न रहता है। न वह शोक करता है और न किसी वस्तुकी आकाङ्क्षा करता है। वह सब भूत-प्राणियोंमें समभावसे अपने स्वरूपभूत परमात्माको ही देखता है तथा भगवान्‌की पराभक्ति प्राप्त कर अन्तमें परमपदको प्राप्त कर लेता है।

वास्तवमें शुद्ध सत्संगमें भगवत्कथा या भगवच्चरितामृतका श्रवण, गान, पान आदि मूल तत्त्व होता है, जैसा कि गोस्वामीजीने कहा है—

हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥

अर्थात् संतोंका समाज चलता-फिरता तीर्थराज प्रयाग है, जहाँ भगवान् शिव और विष्णुकी कथा ही त्रिवेणी है, जो सुनते-न-सुनते तत्काल ही समस्त मोद-मङ्गलोंको प्रदान कर देती है। इसमें अवगाहन करते ही साधक अपने अन्तर्हृदयमें परिवर्तन परिलक्षित करने लगता है। वाल्मीकि, नारद, व्यास आदिने अपने मुखसे बताया कि सत्संगके द्वारा ही हममें यह परिवर्तन आ गया और इतना हमारा उत्थान हो गया। महर्षि वसिष्ठने भी कहा है—सत्संग अकेले ही सब कुछ कर देता है। फिर किसी अन्य साधनकी अपेक्षा नहीं रहती। जो विशुद्ध उज्ज्वल धारवाली सत्संगति-रूप गङ्गामें नित्य अवगाहन करता है, उसे जप, तप, तीर्थयात्रा, दान, यज्ञ आदि साधनोंकी कोई अपेक्षा नहीं होती। वह एकमात्र सत्संगतिसे ही पूर्ण कृतार्थ हो जाता है और उसे सहज ही जीवन्मुक्ति और भगवत्प्राप्ति हस्तगत हो जाती है—

यः स्नातः शीतसितया साधुसंगतिगङ्गया।
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः॥

(योगवासिष्ठ, मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरण १६। १०)



साधकोंके प्रति—

मुक्ति और भक्ति

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भगवान्‌का अंश होनेसे जीवमात्रमें भगवान्‌के प्रति स्वतः एक आकर्षण विद्यमान है। यह सिद्धान्त है कि आकर्षण सजातीयतामें होता है; अतः अंशका अंशीकी तरफ स्वतः आकर्षण होता है; जैसे—पृथ्वीका अंश होनेसे ऊपर फेंके गये पत्थरका स्वतः पृथ्वीकी तरफ (नीचे) आकर्षण होता है। जैसे भगवान् और उनका अंश जीव—दोनों अविनाशी हैं, ऐसे ही उनके बीच यह आकर्षण भी अविनाशी है। परंतु जब जीव अहम्‌के साथ अपना सम्बन्ध मान लेता है, शरीरमें मैं-मेरापन कर लेता है, तब यही आकर्षण संसारकी तरफ हो जाता है। वास्तवमें संसारकी तरफ शरीरका ही आकर्षण होता है; क्योंकि शरीर समष्टि संसारका अंश है; परंतु शरीरसे तादात्म्यके कारण जीव उस आकर्षणको अपना मानता है।

जीवमें जो एक स्वतःसिद्ध आकर्षण है, वह भगवान्‌की तरफ होनेसे 'प्रेम' और संसारकी तरफ होनेसे 'राग' हो जाता है। संसारका आकर्षण (राग) भी बढ़ता रहता है* और भगवान्‌का आकर्षण (प्रेम) भी बढ़ता रहता है†। परंतु दोनोंमें फर्क यह है कि अनित्य होनेसे संसारका आकर्षण भी अनित्य होता है और नित्य होनेसे भगवान्‌का आकर्षण भी नित्य होता है। इसलिये संसारका रस तो नीरसतामें बदल जाता है, पर प्रेमका रस सदा सरस ही रहता है। वह प्रेम-रस प्रतिक्षण बढ़ता ही रहता है, उसका कभी अन्त आता ही नहीं! **'दिने दिने नवं नवं नमामि नन्दसम्भवम्।'**

एक मार्मिक बात है कि जैसे जीवका भगवान्‌की ओर आकर्षण है, ऐसे ही भगवान्‌का भी जीवकी ओर आकर्षण है—***'सब मम प्रिय सब मम उपजाए॥'*** (मानस ७।८६।२)। जीव तो संसारमें आकर्षण (राग) पैदा करके भगवान्‌से विमुख हो जाता है, पर भगवान् कभी जीवसे विमुख नहीं होते। जीवके प्रति उनके प्रेममें कभी किंचिन्मात्र भी कमी नहीं आती; क्योंकि वे पूर्ण हैं। इस प्रेमके कारण ही भगवान् जीवको निरन्तर अपनी ओर खींचते रहते हैं, उसको किसी भी अवस्था, परिस्थिति आदिमें टिकने नहीं देते! कोई भी अवस्था, परिस्थिति नित्य नहीं रहती। जीव जिसको भी पकड़ता है, उसको भगवान् छुड़ा देते हैं, यही भगवान्‌का जीवको अपनी ओर खींचना है। इतना ही नहीं, जीवको सांसारिक भोग और संग्रहसे स्वतः अरुचि, ग्लानि भी होती है; परंतु हृदयमें भोग और संग्रहका ही महत्त्व होनेसे वह उनको पकड़े रखता है, छोड़ता नहीं। भगवान् छुड़ाते रहते हैं और वह नया-नया पकड़ता रहता है! आखिर भगवान्‌का अंश जो ठहरा!

बच्चेका माँसे जितना प्रेम होता है, उससे भी बहुत अधिक प्रेम माँका बच्चेसे होता है। परंतु बच्चा माँके प्रेमको पहचानता नहीं। अगर बच्चा माँके प्रेमको पहचान ले तो वह माँकी गोदीमें रो ही नहीं सकता! अगर माँकी गोदीमें रोयेगा तो हँसेगा कहाँ? ऐसे ही भगवान्‌का जीवसे कम प्रेम नहीं है। काकभुशुण्डिजी बालरूप भगवान् श्रीरामके साथ खेलते-खेलते जब उनके पास आते हैं, तब भगवान् हँसने लगते हैं और जब उनसे दूर चले जाते हैं, तब भगवान् रोने लगते हैं—***'आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं।'*** (मानस ७।७७ क)। यह भगवान्‌का जीवके प्रति कितना प्रेम है! परंतु अपनेको शरीर माननेके कारण, संसारमें आकर्षण (राग) होनेके कारण, भगवान्‌से विमुख होनेके कारण जीव भगवान्‌के आकर्षण (प्रेम) को पहचानता नहीं। अगर वह भगवान्‌के प्रेमको पहचान जाय तो उसका संसारमें आकर्षण हो ही नहीं!

---

* न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

(श्रीमद्भा० ९।१९।१४; मनु० २।९४)

'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥' (मानस १।१८०।१; ६।१०२।१)

† 'प्रतिक्षणवर्धमानम्' (नारद० ५४)

प्रेम सदा बढ़िबौ करै, ज्यों ससिकला सुबेष। पै पूनो यामें नहीं, ताते कबहुँ न सेष॥

जबतक शरीरमें अपनापन है, भोगोंका महत्त्व है, राग है, आसक्ति है, तबतक भगवान्‌का प्रेम प्रकट नहीं होता। बाहरसे भोगोंका त्याग कर देनेपर भी भीतरमें भोगोंके प्रति एक सूक्ष्म आकर्षण रहता है, जिसको 'रसबुद्धि' कहते हैं। जबतक यह रसबुद्धि रहती है, तबतक भोग और संग्रहके सुखकी पराधीनता रहती है। इस रसबुद्धिके निवृत्त होनेपर पराधीनता नहीं रहती और स्वाधीनता आ जाती है। इस स्वाधीनताको ही 'मुक्ति' कहते हैं। जो पहले प्रकृतिकी परवशताके कारण 'प्रकृतिस्थ' था, वही प्रकृतिकी परवशता मिटनेपर 'स्वस्थ' हो जाता है। रसबुद्धि निवृत्त होनेपर भी संस्कार-(स्मृति-) रूपसे अहंकारकी एक गन्ध रह जाती है। परंतु अहंकारकी इस गन्धको मिटानेके लिये कोई उद्योग नहीं करना पड़ता। साधनावस्थामें अपनी प्रक्रिया (साधन, मत) का एक आग्रह रहता है। सिद्ध (मुक्त) होनेपर यह आग्रह तो नहीं रहता, पर जिस साधनसे सिद्धि मिली है, उस साधनका एक महत्त्व (आदर) रहता है। यह महत्त्व ही अहंकारकी गन्ध है, जिसके कारण दार्शनिकोंमें तथा दर्शनोंमें मतभेद रहता है। परंतु प्रेमकी प्राप्ति होनेपर यह अहंकारकी गन्ध भी निवृत्त हो जाती है और जीवकी परमात्माके साथ सहज एकता प्रकट हो जाती है।

ज्ञानयोगमें तो मुक्तिके बाद प्रेम प्राप्त होता है, पर भक्तियोगमें सीधे ही प्रेम प्राप्त हो जाता है। ज्ञानयोगके जिस साधकमें भक्तिके संस्कार होते हैं और जो मुक्तिको ही सर्वोपरि नहीं मानता, उसको मुक्तिमें संतोष नहीं होता। अतः ऐसे साधकको मुक्ति प्राप्त होनेके बाद प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है*। परंतु जिस साधकमें भक्तिके विशेष संस्कार नहीं होते और जो मुक्तिको ही सर्वोपरि मानता है, वह सदा मुक्त ही रहता है अर्थात् उसको प्रेमकी प्राप्ति होनी कठिन है। अपने मतका आग्रह और अभिमान प्रेमकी प्राप्तिमें आड़ लगा देता है।

जैसे, कोई मनुष्य राकेटमें बैठकर पृथ्वीकी गुरुत्वाकर्षण-शक्तिसे बाहर निकल जाता है, तो वह चन्द्रमाकी गुरुत्वाकर्षण-शक्तिमें प्रवेश कर जाता है अर्थात् उसका आकर्षण चन्द्रमाकी तरफ हो जाता है। ऐसे ही सांसारिक रसबुद्धिकी निवृत्ति होनेपर जब साधक संसारके आकर्षणसे बाहर निकल जाता है, तब उसका आकर्षण स्वतः भगवान्‌की तरफ हो जाता है। संसारके आकर्षणसे बाहर निकलना ही मुक्ति है और भगवान्‌की तरफ आकर्षण होना ही भक्ति (प्रेम) है। मुक्तिमें एकरस तथा अखण्ड आनन्द है और भक्तिमें प्रतिक्षण वर्धमान तथा अनन्त आनन्द है।

प्रश्न—सभी भेद अहम्‌से पैदा होते हैं, तो फिर अहम्‌का नाश होनेपर प्रेमी-प्रेमास्पदका भेद कैसे सम्भव है?

उत्तर—तत्त्वसे प्रेमी और प्रेमास्पदमें किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है। प्रेमी-प्रेमास्पदका भेद तो केवल प्रेमकी लीलाके लिये कल्पित है—

द्वैतं मोहाय बोधात्प्राग्जाते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्॥
पारमार्थिकमद्वैतं द्वैतं भजनहेतवे।
तादृशी यदि भक्तिः स्यात् सा तु मुक्तिशताधिका॥

(बोधसार)

'बोधसे पहलेका द्वैत मोहमें डाल सकता है; परंतु बोध हो जानेपर भक्तिके लिये कल्पित द्वैत अद्वैतसे भी अधिक सुन्दर (सरस) होता है। वास्तविक तत्त्व तो अद्वैत ही है, पर भजनके लिये द्वैत है। ऐसी यदि भक्ति है तो वह मुक्तिसे भी सौगुनी श्रेष्ठ है।'

तात्पर्य है कि अहम् मिटनेसे पहलेका द्वैत बन्धनके लिये है और अहम् मिटनेके बादका द्वैत प्रेमके लिये है। ज्ञानमें तो द्वैतका अद्वैत होता है अर्थात् दो होकर एक हो जाते हैं और भक्तिमें अद्वैतका द्वैत होता है अर्थात् एक होकर दो हो जाते हैं। जीव और ब्रह्म एक हो जायँ तो ज्ञान होता है और एक ही ब्रह्म दो रूप हो जायँ तो भक्ति होती है।

एक ही अद्वैत तत्त्व प्रेमकी लीलाके लिये श्रीकृष्ण और श्रीजी—इन दो रूपोंमें प्रकट होता है। दोनोंमें कौन प्रेमी है और कौन प्रेमास्पद—इसका पता ही नहीं चलता; क्योंकि दोनों ही प्रेमी हैं और दोनों ही प्रेमास्पद हैं! मुक्त होनेके बाद प्रेमी भक्त श्रीजीमें लीन हो जाते हैं अर्थात् उनका दर्जा श्रीजीकी तरह हो जाता है। तात्पर्य है कि भगवान्‌में श्रीजीका तथा श्रीजीमें भगवान्‌का जैसा आकर्षण है, वैसा ही आकर्षण भगवान्‌में उन भक्तोंका तथा भक्तोंमें भगवान्‌का हो जाता है।

---

* ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ (गीता १८। ५४)
'ब्रह्मभूत-अवस्थाको प्राप्त प्रसन्न मनवाला साधक न तो किसीके लिये शोक करता है और न किसीकी इच्छा करता है। ऐसा सम्पूर्ण प्राणियोंमें समभाववाला साधक मेरी पराभक्ति-(प्रेम) को प्राप्त हो जाता है।'

अचाह-पद

सभी साधनोंका पर्यवसान अचाह-पदमें है, कारण कि अचाह होनेपर ही अप्रयत्न और अप्रयत्न होनेपर ही साध्यसे अभिन्नता प्राप्त होती है, जो जीवनका मुख्य उद्देश्य है।

अब विचार यह करना है कि चाहकी उत्पत्तिका हेतु क्या है? रुचि और अरुचिरूपी भूमिमें चाहरूपी दूर्वा उत्पन्न होती है। यदि रुचि-अरुचिका समूह न रहे, तो चाहकी उत्पत्तिके लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता, कारण कि रुचि-अरुचिके आधारपर ही सीमित अहंभाव सुरक्षित रहता है। उसीसे चाहकी उत्पत्ति होती है। अतः सीमित अहंभावके रहते हुए अचाह-पदकी प्राप्ति सम्भव नहीं है।

सीमित अहंभावका अन्त कैसे हो? इसके लिये रुचि-अरुचिके स्वरूपको जानना होगा। रुचि और अरुचिका सम्बन्ध 'स्व' और 'पर'से है। 'स्व'की विमुखता 'पर'की रुचि जाग्रत् करती है और 'पर'की अरुचि 'स्व'की रुचिको सबल बनाती है। 'पर'की अरुचि निषेधात्मकरूपसे 'स्व'में प्रतिष्ठित करती है और 'स्व'की रुचि विध्यात्मकरूपसे 'पर'में अरुचि उत्पन्न करनेमें समर्थ है।

अरुचिका अर्थ द्वेष नहीं है और रुचिका अर्थ राग नहीं है। 'पर'की अरुचि संयोगको संयोग-कालमें ही वियोगमें बदलती है और 'स्व'की रुचि वर्तमानमें ही नित्ययोग प्रदान करती है। अतः वियोग अथवा नित्य-योग रुचि-अरुचिके समूहको मिटानेमें समर्थ है।

रुचि-अरुचिके मिटते ही अचाह-पद स्वतः प्राप्त हो जाता है। हमसे बड़ी भूल यही होती है कि जो वास्तवमें अपना है, उसमें अरुचि और जिससे केवल मानी हुई एकता है, उसमें रुचि उत्पन्न कर लेते हैं। फिर चाहके जालमें फँसकर जो करना चाहिये, वह नहीं कर पाते, अपितु जो नहीं करना चाहिये, उसको करने लगते हैं। उसके करनेसे ही हम कर्तव्यसे च्युत हो जाते हैं।

कर्तव्यसे च्युत होते ही राग-द्वेष उत्पन्न हो जाते हैं। राग-द्वेष उत्पन्न होनेसे जिससे जातीय तथा स्वरूपकी एकता है, उससे विमुखता और जिससे केवल मानी हुई एकता है, उसमें आसक्ति हो जाती है, जो चाहको सजीव बनानेमें हेतु है।

अब विचार यह करना है कि हम किसे अपना कह सकते हैं? अपना उसीको कह सकते हैं, जिससे देश-कालकी दूरी न हो, जो उत्पत्ति-विनाशयुक्त न हो और जो अपनेको अपने-आप प्रकाशित करनेमें समर्थ हो, क्योंकि अपनेसे अपना वियोग सम्भव नहीं है और जो अपना नहीं है, उससे वियोग होना अनिवार्य है।

इस दृष्टिकोणसे बाह्य वस्तुकी तो कौन कहे, शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन आदिको भी अपना नहीं कह सकते, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि जिसे हम अपना नहीं कह सकते, वह हमारी सेवाका पात्र नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि उससे प्रेम नहीं किया जा सकता।

'सेवा' माने हुए सम्बन्धको तोड़नेमें और 'प्रेम' जिससे जातीय एकता है, उससे अभिन्न करनेमें समर्थ है। इस दृष्टिसे शरीर आदि सभीकी सेवा की जा सकती है, पर उनसे न तो ममता की जा सकती है और न प्रेम ही। प्रेम उसीसे किया जा सकता है, जो उत्पत्ति-विनाशरहित है।

प्रेम करनेके लिये हमें अपने-आपको समर्पण करना पड़ता है और सेवा करनेके लिये संग्रह की हुई वस्तु एवं योग्यता आदिको देना पड़ता है। प्रेम हमें अन्तर्मुख-जीवनसे अभिन्न करता है और सेवा क्रिया-शीलता प्रदान करती है।

जिस प्रकार अचल हिमालयसे अनेक नदियाँ निकलती हैं और भूमिको हरा-भरा बनानेमें समर्थ होती हैं, उसी प्रकार अन्तर्मुख प्रेमयुक्त जीवनसे सेवारूपी अनेक नदियाँ निकलती हैं, जो विश्वको हरा-भरा बनानेमें समर्थ होती हैं। अथवा यों कहें कि प्रेमसे अपना कल्याण और सेवासे सुन्दर समाजका निर्माण होता है।

सेवा-भावसे उत्पन्न हुई क्रियाशीलता प्रेमको पुष्ट करती है और प्रेम सेवाको सजीव बनाता है। सेवा तथा प्रेमयुक्त जीवनसे ही रुचि-अरुचिका अन्त होता है। रुचि-अरुचिका अन्त होते ही अहंभाव गल जाता है। अहंभावके गलते ही सब प्रकारकी चाहका अन्त हो जाता है। फिर लक्ष्यसे अभिन्नता स्वतः प्राप्त हो जाती है, जो निःसंदेहता और प्रेमकी प्राप्तिमें समर्थ है। यही जीवनका लक्ष्य है। (जीवन-दर्शनसे)

कानून और मनुष्यत्व

(श्रीशेषनारायणजी चंदेल)

जजने पूछा—तुम्हारे कपड़े लाल कैसे हुए ?

गिरीश—महाराज ! उस घायल मनुष्यके दर्दने मेरे हृदयको द्रवित कर दिया। बहते हुए रक्तको मैंने कपड़ेसे रोक लेनेकी चेष्टा की। इसीसे वह लाल हो गया।

जज—शहरकी ओर तुम दौड़े क्यों ?

गिरीश—बहता हुआ रक्त मुझसे न रुक सका। अतः शीघ्र ही डॉक्टरको बुलाने दौड़ पड़ा।

जज—तुमने अपनी लाठी खेतमें ही क्यों छोड़ दी ?

गिरीश—वह मेरी लाठी न थी। उस घायल मनुष्यकी थी।

जज—गुलामने तुम्हें कहाँ पकड़ा ?

गिरीश—नगरके आरम्भमें।

जज—उस समय उसके कपड़े कैसे थे ?

गिरीश—कपड़े सादे और साफ थे।

जज—किंतु गुलामका तो कहना है कि तुम्हींने उसको मारा है।

गिरीश—यह सर्वदा झूठा और मिथ्या आरोप है।

जज—उसकी ओरसे दो गवाह हैं।

गिरीश—वे भी झूठे होंगे।

जज—तो तुमने किसको मारते हुए देखा ?

गिरीश—मैंने किसीको नहीं देखा। मैं वहाँपर पहुँचा, तब वह घायल पड़ा था।

जज—तुम्हारी तरफसे कोई सबूत या गवाह है ?

गिरीश—नहीं है महाराज ! न कुछ सबूत है, न कोई गवाह। वहाँ मैं अकेला था। गवाह किसे बनाऊँ ?

जज—गिरीश !....... !

गिरीश—महाराज ! आपकी आत्मा गवाही दे रही होगी।

जज—चुप रहो। जाओ।

× × ×

जज साहब घर पहुँचते हैं। उदास मुखकी ओर देखकर पत्नीने पूछा—आज उदास कैसे हो ?

जज—न पूछो।

पत्नी—क्यों ?

जज—वह गिरीश ! कैसा निर्दोष-निष्कपट चेहरा था उसका। उसके मुखसे करुणा और हृदयसे सौहार्द फूट रहा था।

पत्नी—तो क्या हुआ ?

जज—धरतीका हृदय फट गया और क्या होगा।

पत्नी—कहनेका मतलब ?

जज—सबूतके अभावमें एक महात्माको कानूनने हत्यारा ठहराया है।

पत्नी—तो तुम छोड़ दो उन्हें।

जज—मैं जज हूँ।

पत्नी—पर मनुष्य भी तो हो ?

जज—नहीं, मनुष्यताको कुचल देना होता है। देवि ! उसको देखकर मेरा हृदय फट रहा था। कलेजा जल रहा था। मैं भी चाहता था कि उसके आँसूसे मिलकर मेरे आँसू एक हो जायँ। किंतु क्या करूँ, जहरका घूँट पीकर रह जाना होता है। देवि ! कानून कानून है, उसमें दया नहीं, करुणा नहीं और न सहानुभूति ही। वहाँ तो प्रमाणकी महत्ता है।

× × ×

आज दीपावली है। घर-घर दीप जल रहे हैं। फटाके और दनाकेकी आवाजसे आकाश गूँज रहा है।

किंतु आजके लिये दुनियाने गिरीशको न रहने दिया। पंद्रह दिन पूर्व वह फाँसीके तख्तेपर लटका दिया गया।

किसीकी सेवा करके यह मत मानो कि हमने उसका उपकार किया है। उपकारकी भावनामें अभिमान रहता है। अभिमान सेवाकी मात्राको और महत्त्वको घटा देता है।—भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

('भवरोगकी रामबाण दवा' पुस्तकसे)

ब्रह्मचर्य

१-ब्रह्मचर्यमय जीवन परमपुरुषार्थमय जीवन है।

२-जो भक्त ब्रह्मचर्य धारण कर शेष रात्रिमें ध्यान-भजनका अभ्यास करता है, उसे प्रातःकाल स्नान करनेकी आवश्यकता नहीं है।

३-भोग-बुद्धिको नष्ट कर देना, उसे उखाड़कर फेंक देना ही उत्तम ब्रह्मचर्य है। वासनाओंका मुख्य कारण भोग-बुद्धि ही है। अतः ब्रह्मचारियोंको सावधान होकर उसका निराकरण करना चाहिये। प्रत्येक इन्द्रियका अपना-अपना ब्रह्मचर्य है। अच्छी बातें कहना वाणीका ब्रह्मचर्य है, अच्छी बातें सुनना कानोंका ब्रह्मचर्य है और अच्छी चीजें देखना आँखोंका ब्रह्मचर्य है। इन सब इन्द्रियोंको वशमें रखकर ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। इन्द्रियोंको स्वच्छन्द रखना ठीक नहीं, इसीलिये श्रीसूरदासजीने अपनी आँखोंको फोड़ लिया था।

४-आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन करनेकी इच्छावाले व्यक्तिको यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि मैं जीवन-पर्यन्त किसी भी प्रकार ब्रह्मचर्य-खण्डन नहीं करूँगा तथा प्राणपणसे इन नियमोंका पालन करूँगा—

(क) अष्ट प्रकारके मैथुनोंका सर्वथा त्याग।

(ख) स्त्रीका संकल्प ही न करना।

(ग) स्त्री या स्त्रीके चित्रका, जहाँतक बने दर्शन ही न करना।

(घ) यदि एक बार भूलसे दृष्टि चली जाय तो उधरसे तत्काल हटा लेना और दूसरी बार भूलकर भी उधर न देखना।

(ङ) स्त्रियोंको भगवती-स्वरूप समझना।

(च) स्त्री-संगियोंका संग न करना।

(छ) एकान्तमें किसी भी स्त्रीसे भाषण न करना।

(ज) किसी भी जीवको मैथुन करते न देखना।

५-वीर्य, प्राण और मन—इन तीनोंका परस्पर बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। इनमेंसे एकके स्थिर होनेसे तीनों स्थिर हो जाते हैं। इसीसे शास्त्रोंमें ब्रह्मचर्य-पालनपर बहुत जोर दिया गया है।

६-ब्रह्मचारीको इन इक्कीस नियमोंका यथासम्भव सर्वदा पालन करना चाहिये—

(१) कब्ज कभी मत होने दो। यदि शौचकी हाजत न हो तो थोड़ा-सा जल पीकर सूर्यस्वर चला दो और बायें स्वरको बंद कर दो।

(२) मैदा आदि गरिष्ठ वस्तुएँ तथा चाय आदि कब्ज करते हैं, अतः इनसे बचो।

(३) अत्यन्त आवश्यक कार्यवश रोगी या सेवक आदिके सिवा और किसी व्यक्तिको कभी स्पर्श न करो।

(४) कभी किसीको गाली मत दो।

(५) बाल, कपड़े और बूट आदिका शौक कभी मत करो; क्योंकि ऐसा करनेसे शरीर, मन, बुद्धि किसीकी भी उन्नति नहीं होती तथा कामवासनाकी प्रवृत्ति बढ़ती है।

(६) जिस चीजसे तुम्हारे स्वास्थ्य और बलकी वृद्धि हो उसीका सेवन करो। रसनेन्द्रियकी तृप्तिके लिये कोई चीज मत खाओ-पियो।

(७) इत्र-फुलेल आदि सुगन्धित पदार्थोंका सेवन केवल ओषधिके लिये कर सकते हो, शौकके लिये नहीं।

(८) प्रतिदिन नियमानुसार व्यायाम करो। इससे अवरुद्ध भोजन भी पच जाता है।

(९) प्रतिदिन दातौन करनी ही चाहिये, नहीं तो दाँत खराब हो जाते हैं और उनका पाचन-शक्तिपर बहुत प्रभाव पड़ता है।

(१०) त्वचा-सम्बन्धी रोगोंसे बचने और शरीरकी गर्मीको शान्त रखनेके लिये प्रतिदिन स्नान करना बहुत आवश्यक है।

(११) अपने विचारोंको दिनभर और रात्रिभर पवित्र रखनेके लिये प्रातः-सायं दोनों समय संध्योपासन करना परम आवश्यक है।

(१२) रोगाणुओंको नष्ट करनेके लिये, जल, वायु और अन्नकी शुद्धिके लिये तथा परोपकारकी भावनाको स्थिर रखनेके लिये हवन करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

(१३) मांस और शराबका सेवन तो विपत्तिके समय भी नहीं करना चाहिये। रातको रसदार शाक और दही खाना अच्छा नहीं। ब्रह्मचर्य-पालनके लिये इमली आदि

खटाई, तेल, लाल मिर्च, प्याज, लहसुन और गर्म मसालोंका त्याग भी अत्यन्त आवश्यक है।

(१४) दोपहरके भोजनके पश्चात् पंद्रह मिनट विश्राम करना चाहिये तथा सायंकालके भोजनके पश्चात् आधा घंटा घूमना चाहिये।

(१५) दिनमें कभी नहीं सोना चाहिये। किंतु यदि रातको अधिक जागना पड़े तो जितनी देर रातमें निद्रा भंग हुई हो उससे आधा दिनमें सो सकते हो।

(१६) सोनेसे पहले लघुशंकासे निवृत्त हो लेना चाहिये।

(१७) अधिकतर दायीं करवटसे ही सोना चाहिये। चित होकर कभी न सोओ। इसके लिये नाभिके नीचेसे कपड़ा बाँधकर पीठकी ओर उसमें गाँठ लगा दो। गाँठ कम-से-कम तीन इंच मोटी होनी चाहिये।

(१८) यदि रात्रिमें निद्रा-भंग हो जाय तो जबतक पुनः गाढ़ी निद्रा न आये, तबतक किसी अच्छे कार्यमें लग जाओ। किंतु यदि उठनेके समयसे एक घंटा पहले खुले तो फिर मत सोओ।

(१९) उपन्यास आदि अश्लील पुस्तकें कभी मत पढ़ो।

(२०) ताश, चौपड़ आदि भी कभी नहीं खेलना चाहिये। इनसे कपट करनेकी बुद्धि बढ़ती है। इसके स्थानपर अपने मकानके आस-पासकी फुलवाड़ीको साफ करनेका काम कर सकते हो।

(२१) नाटक-सिनेमा आदिमें कभी मत जाओ। इनमें भाग लेना तो और भी अधिक हानिकारक है।

—(श्रीउड़िया बाबाजीके उपदेशसे उद्धृत)

मेरी अभिलाषा

(श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

बृन्दाबन सों बन नहीं, नन्दगाँव सों गाँव।
बंशीबट सों वट नहीं, कृष्ण नाम सों नाम॥
कब मेरे मन महँ बसै, बृन्दाबन वर धाम।
कब रसना निशिदिन रटै, सुख तें श्यामा-श्याम॥
कब इन नयननि तैं लखूँ, बृन्दाबन की धूरि।
जो रसिकनि की परम प्रिय, पावन जीवन-मूरि॥
कब लोटूँ अति बिकल ह्वै, ब्रज-रज महँ हरषाय।
करूँ कीच कब धूरि की, नयननि नीर बहाय॥
कब रसिकनि के पैर परि, रोऊँ ह्वै के दीन।
कब प्रिय दरशन बिनु बनूँ, बिकल नीर बिनु मीन॥
कब अति कोमल चित रसिक मोकूँ हिये लगाय।
गहकि मिलैं सिर कर धरैं, मगन होहिं अपनाय॥
बृन्दाबन महँ सखनि सँग, कब निरखूँ नँदनन्द।
मोर मुकुट सिर बेनु कर, कारी कमरी कन्ध॥
कब मोकूँ यशुमति-तनय, सखा समुझि लै संग।
खेलैं बृन्दाबिपिन महँ, परसैं मेरो अंग॥
का इन नयननि तैं कबहुँ, निरखूँ रास-बिलास।
का बसि बृन्दाबन कबहुँ, पुरवै मेरी आस॥

—प्रेषक—डॉ॰ श्रीप्रकाशचन्द्रजी मिश्र 'अलभ'

'यह दिखता क्या है ?.....'

(बहिन श्रीरैहाना तय्यबजी)

हाँ ! 'अरु है क्या ?—न मैं जानूँ, न तू जाने !'

बड़ौदेमें हर जुम्माको एक बड़ा बाजार लगता है, जहाँ तरह-तरहकी अजीब और नायाब चीज़ें बिकने आती हैं। शौकीन लोग इसकी बड़ी क़दर करते हैं, और सारे हफ़्ते इसी ताकमें बैठे रहते हैं कि कब जुम्मा आये और कब हम जायँ और अच्छी-अच्छी चीज़ें खरीदकर लायें ! एक रोज़ हमारे कोई अज़ीज़, जिनको पीतल और चीनीका अज़हद शौक है, जुम्मा बाज़ारसे बड़े खुश-खुश आये और मुझे एक अजीब-सी चीज़ दिखलाने लगे, जो वर्षोंके मैल, मिट्टी और मोर्चेसे ऐसी ढक गयी थी कि न तो उसका रंग नज़र आता था, न यही समझमें आता था कि यह किस धातुकी बनी हुई है और क्या चीज़ है। मैंने नाक-भौं चढ़ाकर कहा—'अरे यह क्या उठा लाये ?' मुस्कुराकर फ़रमाया—'इसे साफ तो होने दो ! फिर देखना.....।' उस चीज़को खूब धोया, माँजा, घिस-घिसकर साफ़ किया, तब वह अपने असली रंग-रूपमें चमक उठी। बड़ी खूबसूरत पीतलकी लोटी थी, जिसमें निहायत नफ़ीस ताँबेकी नक्शकारी की हुई थी और देव-देवियोंकी बहुत ही सुन्दर तस्वीरें बनी हुई थीं। क्या ही अद्भुत कला थी ! उसे देखकर मैं फड़क उठी....।

दृश्यमें छिपे हुए अदृश्यकी खूबीको परखनेके लिये निगाह चाहिये....।

एक रोज़ मैं बाग़में घूम रही थी। ज़मीनपर बहुत कचरा-घास देखकर उसे हटानेमें मसरूफ़ हो गयी। एक नन्हा-सा पौधा था, जिसपर बड़े नाजुक आसमानी रंगके बारीक़-बारीक़ फूल खिले हुए थे। मैंने उसे दिल-ही-दिलमें प्यार कर लिया और वहीं रहने दिया। हमारी मालिन चंदाकी आवाज कानोंपर पड़ी—'साहब ! उसे निकाल दीजिये।' मैंने चौंककर पूछा—'क्यों ?' बोली—'यह तो कचरा है साहब !' अच्छा ! इस जंगल और मैदानोंके बाशिंदेके लिये यहाँ जगह न थी। हर चीज़ अपनी असली और योग्य जगहके बाहिर 'कचरा' ही होती है, ख्वाह वह कितनी ही दिलपसंद और अच्छी क्यों न हो.....मैंने निःश्वास लेकर उसे उखाड़ डाला, यह कहते हुए—'ले, चल, भाई ! खुदा हाफ़िज़।' उसके बाद मेरी नज़र और जगह पड़ी, जहाँ कई गमलोंके करीब बहुत-सा कचरा ऊगा हुआ था। मैंने उसे भी उखाड़ना शुरू किया, कि फिर चंदाकी आवाज आयी—'अरे साहब ! उसे रहने दीजिये ! मैंने फिर हैरान होकर पूछा—'क्यों ?' बोली—'यह तो बड़ी अच्छी भाजी है, साहब !'

खूब ! मैं सोचमें पड़ गयी—अजब तमाशा है यह ! फूल 'फूल' नहीं है, 'कचरा' है, कचरा 'कचरा' नहीं है, 'भाजी' है !

'खरा-खोटा पहचाननेके लिये भी तो नज़र चाहिये....।'

किसी दोस्तने मुझसे एक रोज़ कहा—'रैहाना ! मेरी एक सहेली हैं, जो संगीतकी बड़ी शौक़ीन हैं—तुम एक रोज़ उन्हें गाना सुनाओगी ? मैंने खुशीसे क़बूल किया और जिस रोज़ उन्होंने बुलाया, उनके वहाँ पहुँच गयी। उनकी सहेली भी कुछ देर बाद आ गयीं। ज्यों ही उन्होंने कमरेमें क़दम रखा कि मेरा दम उखड़ गया और दिल धकसे बैठ गया। ऊँचे, लंबे बाल—कुछ अजब ढंगसे सँवारे हुए, चेहरा पाउडर और रंगसे बिलकुल ज़र्द और उसमें जासूदी रंगके चमकते हुए लाल होंठ। अब्रुओंको साफ़ कर बस दो बारीक सियाह रेखाएँ माथेपर रहने दी थीं, साड़ी इस तरह तंग लपेट ली थी कि मामूली क़दमतक भरनेमें दिक्कत होती थी, ऊँची-ऊँची एड़ियोंसे जिस्मका झोंक कुछ बेढब-सा हो रहा था। मैंने मन-ही-मन घबराते हुए सोचा—'हैं ! हैं ! इस 'सिनेमा-स्टार' या गुड़ियाके सामने मैं क्या गाऊँगी ?' वह बैठीं और गुफ़्तगूका सिलसिला जारी हुआ। तब बड़ी सादगीसे कहने लगीं—'हाँ जी, देखिये, हमारी ज़िंदगी कुछ ऐसे चक्करमें गुज़रती है कि परमार्थ सोचनेका वक़्त ही नहीं मिलता। क्या करें ? बस, सुबह घंटे-दो-घंटे—जितना भी हो सके कुछ पूजा-पाठ और भजन कर लेती हूँ। अपने गुरुका सिखलाया हुआ मन्त्र जप लेती हूँ। इस आये दिनकी झंझटमें भगवान्‌को याद करनेकी फ़ुरसत ही कहाँ है ? वरना मुझको भजन-कीर्तनका बड़ा शौक़ है.....' मैं नादिम, खामोश, अपनेको दिल-ही-दिलमें कोसने लगी। बग़ैर जाने-समझे किसीका तिरस्कार कर बैठना, यह कितना बड़ा पाप है। क्या मालूम इस

बिचारीकी ज़िंदगी किस माहौल, किस वातावरणमें गुज़रती होगी ? बहरहाल अल्लाह पाक़, जो रहीमो रहमाँ, अति दयालु, अति कृपालु, प्रेमस्वरूप हैं, वे क्या देखते होंगे ? इस बहिनकी सजावट, जो सिनेमा-स्टारकी-सी थी या उनका दिल, जो संसार-सागरके तलातुममें भी घंटे-दो-घंटे—जितना भी हो सके—अपने प्रभुको याद करनेकी फुरसत किसी तरह निकाल ही लेता था, जिसको 'भजन-कीर्तन'का बड़ा शौक़ था ?

हे अन्तर्यामी ! दिलकी बात तुम्हारे सिवा और जान ही कौन सकता है ?

एक बहिनके बारेमें सुना, वे फ़ैशनकी बड़ी दिलदादा हैं—दिनभर पार्टियोंकी खाक छानती रहती हैं, रातभर नाचती रहती हैं। यह भी सुना कि गाती बड़ा सुन्दर हैं। चुनांचे एक मजलिसमें उनसे गाना सुनानेकी दरख्वास्त की गयी। वे बराबर इनकार करती रहीं और अखीरमें न गाया। तब मैंने उनसे बड़ी इल्तिजा की कि 'बहिन ! खुदाने आपको यह देन दी है, तो दुनियाको उसका फ़ायदा ज़रूर मिलना चाहिये ! आप ऐसी बखीली क्यों करती हैं ?' कुछ देरतक तो वे इधर-उधरके उज्र करती रहीं; जब मैं किसी तरह न मानी, तो आखिर बेहद सादगी और बेसाख्तगीसे बोल उठीं—'बहिन ! सच बात तो यह है कि लोगोंके सामने मैं नहीं गा सकती—मेरा नातिक़ा बंद हो जाता है ! वैसे तनहाईमें भगवान्‌के सामने बैठकर घंटों गा लेती हूँ.....।'

ओफ़्फ़ो ! मैंने दिल-ही-दिलमें अपने दोनों कान ज़ोरसे खींच लिये। 'बेवक़ूफ़ ! जब तू कुछ जानती ही नहीं, तो ख्वाह-म-ख्वाह औरोंके लिये बुरा खयाल क्यों जमा लेती है ?' हाँ ! यही है न वह 'फ़ैशनकी पुतली', वह मोहान्ध संसारी, वह मौज-शौक़में डूबी हुई—यही न, जो वैसे तनहाईमें भगवान्‌के सामने बैठकर घंटों गा लेती है ?'

इस क़िस्मके तजरुबे मुझको (और हरेकको) रात-दिन हुआ करते हैं, जिससे अब मैंने अपनी आँखों और कानोंपर भरोसा करना बहुत हदतक छोड़ दिया है। अच्छे-अच्छे महात्माओंको अपने धर्मसे विचलित होते देखा है और मशहूर विषयी संसारियोंमें महात्माओंके-से दिव्य गुण पाये हैं। अपनी क़ुदरतको वह 'क़ादिरे मुतलक़' ही समझ सकता है। किस जगह, किस जिस्ममें, किस वाणीमें, किस मौक़ेपर वह अपनी झलक दिखला देगा—यह हम नहीं जान सकते। अगर हम इतना याद रख सकें, अगर भगवान् हमसे अहंकार व अभिमानकी दृष्टि और उसीसे उत्पन्न होनेवाले झूठे तिरस्कारका अन्धापन खींच लें, तो कितना अच्छा हो ?

'यह दिखता क्या है, अरु है क्या ?—
न मैं जानूँ, न तू जाने।'

× × ×

'आकाश, सागर, नद अरु वन,
मनुष्य-देह, पशुगन—
जहाँ मैं, वहीं वृन्दावन।.....'

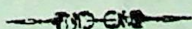
और वह मनमोहन श्यामसुन्दर, वह ज्ञान-तेजसे जगमगाते, अनन्त आत्मदर्शनकी बेखुदीमें झूमते, अपने अकथ्य, अनुपम सौन्दर्यमें मस्त व मगन रहते, अपनी ही योगमायाके सियाह परदेमें छिपे हुए, गुप्त 'साँवरे'—वह विश्व-प्रेमकी वंशीके बजैये और आत्मा-परमात्माकी प्रेम-लीलाके रचनेवाले—वह कहाँ, किस दिलमें, किस चीज़में नहीं हैं ?

'जहाँ मैं, वहीं वृन्दावन।.....'

बस, उनको देखनेके लिये, पहचाननेके लिये, गोपीकी नज़र चाहिये।



जिन भगवान् कृष्णके नेत्र लाल कमलके समान हैं, जो पीताम्बर धारण किये हुए हैं, जिनकी भुजाएँ विशाल हैं, जो अच्युत कृष्ण सबके सुहृद्, भ्राता, मित्र और सम्बन्धी हैं, जो अपनी इच्छासे ही चर्मकी तरह समस्त लोकोंको लपेटे हुए हैं, जो अचिन्त्यात्मा हैं, जो गोविन्द-पुरुषोत्तम हैं, जो सदा हमलोगोंका प्रिय और हित करनेमें लगे रहते हैं। इस जगत्‌में इस प्रकारके उन भक्तजन-पापनाशक श्रीनारायण हरिका जो पुरुष आश्रय लेते हैं, वे निस्संदेह सहजहीमें सारे दुःखोंसे तर जाते हैं। (महाभारत)



भक्त-गाथा—

भक्त बेंकट

दक्षिणमें पुलिवेंदलाके समीप पापघ्नी नदीके किनारे एक छोटे-से गाँवमें बेंकट नामका एक ब्राह्मण निवास करता था। ब्राह्मण भगवान् श्रीरंगनाथजीका बड़ा भक्त था। वह दिन-रात भगवान्‌के पवित्र नामका जप करता रहता। ब्राह्मणकी पत्नीका नाम था रमाया। वह भी पतिकी भाँति ही भगवान्‌का भजन किया करती थी। माता-पिता मर गये थे और कोई संतान थी नहीं, इसलिये घरमें ब्राह्मण-ब्राह्मणी दो ही व्यक्ति थे। दोनोंमें परस्पर बड़ा प्रेम था। वे अपने व्यवहार-बर्तावसे सदा एक दूसरेको सुख पहुँचाते रहते थे।

पिता राजपुरोहित थे, इससे उन्हें अपने यजमानोंसे यथेष्ट धन-सम्पत्ति मिली थी। वे बहुत ही सदाचारी, विद्वान्, भगवद्भक्त और ज्ञानी थे। उन्होंने मरते समय बेंकटसे कहा था—'बेटा! मेरी पूजाके कमरेसे दक्षिणवाली कोठरीके दरवाजेके सामने आँगनके बीचोबीच सात कलसे सोनेकी मोहरोंके गड़े हैं। मैंने बड़े परिश्रमसे धन कमाया है। मुझे बड़ा दुःख है कि मैं अपने जीवनमें इसका सदुपयोग नहीं कर सका। बेटा! धनकी तीन गति होती है। सबसे उत्तम गति तो वह है कि अपने ही हाथों उसे सत्-कार्यके द्वारा भगवान्‌की सेवामें लगा दिया जाय। मध्यम गति वह है कि उसे अपने तथा अपनी संतानके शास्त्रविहित सुख-भोगार्थ खर्च कर दिया जाय और तीसरी अधम गति उस धनकी होती है जो न तो भगवान्‌की सेवामें लगता है और न सुखोपभोगमें ही। ऐसे धनकी गति है उसका दूसरोंके द्वारा छीन लिया जाना अथवा अपने या पराये हाथों बुरे कर्मोंमें खर्च होना। यदि भगवान्‌की कृपासे पुत्र सतोगुणी होता है तो मरनेके बाद धन सत्कार्यमें लग जाता है, नहीं तो वही धन कुपुत्रके द्वारा बुरे-से-बुरे काम—शराब, वेश्या और जूए आदिमें लगकर पीढ़ियों-तकको नरक पहुँचानेमें कारण बनता है। बेटा! तू सपूत है—इससे मुझे विश्वास है कि तू धनका दुरुपयोग नहीं करेगा। मैं चाहता हूँ—इस सारे धनको तू भगवान्‌की सेवामें लगाकर मुझे शान्ति दे। बेटा! धन तभी अच्छा है, जब कि उससे भगवत्स्वरूप दुःखी प्राणियोंकी सेवा होती है। केवल इसीलिये धनवानोंको भाग्यवान् कहा जाता है। नहीं तो धनके समान बुरी चीज नहीं है। धनमें एक नशा होता है जो मनुष्यके विवेकको हर लेता है और नाना प्रकारसे अनर्थ उत्पन्न करके उसे अपराधोंके गड़हेमें गिरा देता है। भगवान् श्रीकृष्णने भक्तराज उद्धवजीसे कहा है—

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥

(श्रीमद्भा० ११। २३। १८—१९)

'चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, पाखण्ड, काम, क्रोध, गर्व, मद, ऊँच-नीचकी और अपने-परायेकी भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, होड़, लम्पटता, जूआ और शराब—इन पंद्रह अनर्थोंकी जड मनुष्यमें यह अर्थ (धन) ही माना गया है। इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि इस 'अर्थ' नामधारी 'अनर्थ' को दूरसे ही त्याग दे।'

'बेटा! मैं इस बातको जानता था, इसीसे मैंने तुझको आजतक इस धनकी बात नहीं बतायी। मैं चाहता था, इसे अपने हाथसे भगवान्‌की सेवामें लगा दूँ, परंतु संयोग ऐसे बनते गये कि मेरी इच्छा पूरी न हो सकी। मनुष्यको चाहिये कि वह दान और भजन-जैसे सत्कार्योंको विचारके भरोसे कलपर न छोड़े। उन्हें तो तुरंत कर ही डाले। पता नहीं कल क्या होगा। इस 'कल-कल' में ही मेरा जीवन बीत गया। मेरे प्यारे बेंकट! संसारमें सभी पिता अपने पुत्रके लिये धन कमाकर छोड़ जाना चाहते हैं, परंतु मैं ऐसा नहीं चाहता। बेटा! मुझे प्रत्यक्ष दीखता है कि धनसे मनुष्यमें दुर्बुद्धि उत्पन्न होती है। इससे मैं तुझे अर्थका धनी न देखकर भजनका धनी देखना चाहता हूँ। इसीलिये तुझसे यह कहता हूँ कि इस सारे धनको तू भगवान्‌की सेवामें लगा देना, तेरे निर्वाहके लिये घरमें जो कुछ पैतृक सम्पत्ति है—जमीन है, खेत है और थोड़ी-बहुत यजमानी है वही पर्याप्त है। जीवनको सादा, संयमी और ब्राह्मणोचित त्यागसे सम्पन्न रखना, सदा सत्यका सेवन करना और करना श्रीरंगनाथ भगवान्‌का भजन। इसीसे तू कृतार्थ हो जायगा और इसीसे तू पुरखोंको तारनेवाला बनेगा। बेटा! मेरी इस अन्तिम सीखको याद रखना।'

बेंकट अपने पितासे भी बढ़कर विवेकी था। उसने

कहा—'पिताजी ! आपकी इस सीखके एक-एक अक्षर अनमोल हैं। सच्चे हितैषी पिताके बिना ऐसी सीख कौन दे सकता है। मोहवश संसारके भोगोंमें फँसाकर जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाले पिता-माता तो बहुत होते हैं, परंतु अज्ञानके बन्धनसे छूटनेका सरल उपाय बतलानेवाले तो आप-सरीखे पिता विरले ही होते हैं। मुझे यह धन न देकर आपने मेरा बड़ा उपकार किया है। परंतु पिताजी ! मालूम होता है, मेरी कमजोरी देखकर ही आपने धनकी इतनी बुराइयाँ बतलाकर धनको महत्त्व दिया है। वस्तुतः धनकी ओर भजनानन्दियोंका ध्यान ही क्यों जाना चाहिये ? धनमें और धूलमें अन्तर ही क्या है ? जो कुछ भी हो—मैं आपकी आज्ञाको सिर चढ़ाता हूँ और आपके संतोषके लिये इस धनको शीघ्र ही भगवान्‌की सेवामें लगा दूँगा। अब आप इस धनका ध्यान छोड़कर भगवान् श्रीरंगनाथजीका ध्यान कीजिये और शान्तिके साथ उनके परम धाममें पधारिये। मेरी माताने मुझे जैसा आशीर्वाद दिया था वैसे ही आप भी यह आशीर्वाद अवश्य देते जाइये कि मैं कभी भगवान्‌को भूलूँ नहीं—मेरा जीवन भगवत्परायण रहे और आपकी यह पुत्रवधू भी भगवान्‌की सेवामें ही संलग्न रहकर अपने जीवनको सफल करे।'

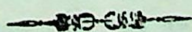
पिताने 'तथास्तु' कहकर भगवान्‌में ध्यान लगाया और भगवान्‌के नामकी ध्वनि करते-करते ही उनका मस्तक फट गया। बेंकट और रमायाने देखा—एक उजली-सी ज्योति मस्तकसे निकलकर आकाशमें लीन हो गयी।

बेंकटने पिताका शास्त्रमर्यादाके अनुसार अन्तिम संस्कार किया। फिर श्राद्धमें समुचित ब्राह्मण-भोजनादि करवाकर पिताके आज्ञानुसार स्वर्णमुहरोंके घड़ोंको निकाला और तमाम धन-राशि गरीबोंकी सेवाके द्वारा भगवत्सेवामें लगा दी।

तबसे बेंकट और रमायाकी निष्ठा और भी दृढ़ हो गयी। उन्होंने अपना सारा जीवन साधनामय बना डाला। पत्नी अपने पतिकी साधनामें सहायता करती और पति पत्नीकी साधनामें सहायक होता। कहीं किसी कारणसे किसी एकके अंदर कोई दोष दीखता या किसी एकके जरा भी गिरनेकी सम्भावना होती तो दूसरा उसे उचित परामर्श देकर, विनयसे समझाकर और प्रेमसे सावधान करके रोक लेता। दोनों एक ही भगवत्पथपर चलते थे और दोनोंसे ही दोनोंको बल मिलता था। यही तो सच्चा दाम्पत्य है।

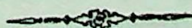
एक दिन दोनों ही भगवान्‌के प्रेममें तन्मय होकर उनको अपने सामने मानकर—अन्तरके नेत्रोंसे देखकर नाच रहे थे और मस्त होकर कीर्तन कर रहे थे। भगवान् यों तो प्रतिक्षण ही भक्तोंके समीप रहते हैं, पर आज तो वे वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गये और उन्हींके साथ थिरक-थिरककर नाचने लगे। भक्त भगवान्‌पर मुग्ध थे और भगवान् भक्तोंपर। पता नहीं—यह आनन्दका नाच कितने समयतक चलता रहा। भगवान्‌की इच्छासे जब बेंकट-रमायाको बाह्य ज्ञान हुआ तो उन्होंने देखा, दोनोंका एक-एक हाथ अपने एक-एक हाथसे पकड़े भगवान् श्रीरंगनाथ दोनोंके बीचमें खड़े मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं। भगवान्‌को प्रत्यक्ष देखकर दोनों निहाल हो गये। आनन्दका पार नहीं था। उनके शरीर प्रेमावेशसे शिथिल हो गये। दोनों भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़े। भगवान्‌ने उठाकर दोनोंके मस्तक अपनी दोनों जाँघोंपर रख लिये और उनपर वे अपने कोमल कर-कमल फिराने लगे। इतनेहीमें दिव्य विमान लेकर पार्षदगण पहुँच गये। भगवान् अपने उन दोनों भक्तोंसहित विमानपर सवार होकर वैकुण्ठको पधार गये। कहना नहीं होगा कि भगवान्‌के संस्पर्शसे दोनोंके शरीर पहले ही चिन्मय दिव्य हो गये थे।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !



'जो अपना समय व्यर्थ खो देता है, वह बहुत बड़ा नुकसान करता है। जो समय भगवान्‌के चिन्तनके लिये है, वह भोगोंके चिन्तनमें लगता है, जो समय दूसरोंका हित, उपकार करनेके लिये है, वह दूसरोंके अहित, अपकारमें लगता है—वह बड़े भारी नुकसानकी बात है। इस नुकसानसे बचो और सावधान रहो।—स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज

('अच्छे बनो' पुस्तकसे)



गीता-तत्त्व-चिन्तन

गीतामें आश्रयका वर्णन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

यावज्जीवो न गृह्णीयाद्धरेश्च चरणाश्रयम्।
तावन्न च तरेत् कश्चिन्मृत्युसंसारसागरात्॥

जीवमात्रका यह स्वभाव है कि वह किसी-न-किसीका आश्रय लेना चाहता है और लेता भी है। मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, लता आदि सभी किसी-न-किसीका आश्रय लेते ही हैं; क्योंकि जीवमात्र साक्षात् परमात्माका अंश है। अतः जबतक यह जीव अपने अंशी परमात्माका आश्रय नहीं लेगा, तबतक यह दूसरोंका आश्रय लेता ही रहेगा, पराधीन होता ही रहेगा, दुःख पाता ही रहेगा।

मनुष्य तो विवेकप्रधान प्राणी है, पर अपने विवेकको महत्त्व न देकर यह स्वयं साक्षात् अविनाशी परमात्माका चेतन अंश होता हुआ भी नाशवान् जड़का आश्रय ले लेता है अर्थात् शरीर, बल, बुद्धि, योग्यता, कुटुम्ब-परिवार, धन-सम्पत्ति आदिका आश्रय ले लेता है—यह इसकी बड़ी भारी गलती है।

गीतामें अर्जुनने भगवान्का आश्रय लेकर ही अपने कल्याणकी बात पूछी है (२।७)। अर्जुनने जबतक भगवान्का आश्रय नहीं लिया, तबतक गीताके उपदेशका आरम्भ ही नहीं हुआ। उपदेशके अन्तमें भी भगवान्ने अपना आश्रय लेनेकी ही बात कही है(१८।६६)। इस प्रकार गीताके उपदेशका आरम्भ और उपसंहार भगवदाश्रयमें ही हुआ है।

भगवान्से मिली हुई स्वतन्त्रताके कारण मनुष्य किसीका भी आश्रय ले सकता है। अतः कई मनुष्य अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिये देवताओंका आश्रय लेते हैं (७।२०), पर परिणाममें उनको नाशवान् फल ही मिलता है (७।२३)। कई मनुष्य भोगोंकी कामनासे वेदोंमें कहे हुए सकाम अनुष्ठानोंका आश्रय लेते हैं, पर परिणाममें वे आवागमनको प्राप्त होते हैं (९।२१)।

कई मनुष्य न तो भगवान्का आश्रय लेते हैं और न भगवान्को भगवान्‌रूपसे ही जानते हैं। अतः ऐसे मनुष्योंमेंसे कई तो आसुरभावका आश्रय लेते हैं (७।१५); कई आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृतिका आश्रय लेते हैं (९।१२); कई कभी पूरी न होनेवाली कामनाओंका आश्रय लेते हैं (१६।१०); कई मृत्युपर्यन्त रहनेवाली अपार चिन्ताओंका आश्रय लेते हैं (१६।११); कई अहंकार, दुराग्रह, घमंड, कामना और क्रोधका आश्रय लेते हैं (१६।१८)। इन आश्रयोंके फलस्वरूप उनको बार-बार चौरासी लाख योनियों और नरकोंमें जाना पड़ता है (१६।१९—२०)।

भगवान्की ओर चलनेवाले मनुष्य भगवान्का और उनके दया, क्षमा, समता आदि गुणोंका (दैवी सम्पत्तिका) आश्रय लेते हैं तथा परिणाममें भगवान्को प्राप्त कर लेते हैं। अतः गीतामें **'मामुपाश्रिताः'** (४।१०); **'मदाश्रयः'** (७।१); **'मामेव ये प्रपद्यन्ते'** (७।१४); **'मामाश्रित्य यतन्ति ये'** (७।२९); **'मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य'** (९।३२); **'मद्व्यपाश्रयः'** (१८।५६); **'तमेव शरणं गच्छ'** (१८।६२); **'मामेकं शरणं व्रज'** (१८।६६) आदि पदोंमें भगवान्के आश्रयकी बात कही गयी है; और **'दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः'** (९।१३) तथा **'बुद्धियोग-मुपाश्रित्य'** (१८।५७) पदोंमें दैवी सम्पत्तिके आश्रयकी बात कही गयी है।*

तात्पर्य है कि गीतामें जितने भी साधन बताये गये हैं, उन सबमें श्रेष्ठ और सुगम साधन भगवान्का आश्रय लेना ही है। जो भगवान्का आश्रय लेकर साधन करता है, उसके साधनकी सिद्धि बहुत शीघ्र और सुगमतापूर्वक हो जाती है। इस बातको भगवान्ने गीतामें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि जो मेरे आश्रित होकर सम्पूर्ण कर्मोंको मेरेमें अर्पण करते हैं, उन भक्तोंका मैं मृत्युरूप संसार-समुद्रसे बहुत जल्दी उद्धार करनेवाला बन जाता हूँ (१२।६—७)। जो मेरा आश्रय लेकर यत्न करते हैं, वे ब्रह्म, अध्यात्म और सम्पूर्ण कर्म तथा अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ-सहित मेरेको जान जाते हैं अर्थात् मेरे

* दैवी सम्पत्ति-(भगवान्के गुणों-)का आश्रय लेना भी भगवान्का ही आश्रय लेना है।

समग्र रूपको जान जाते हैं (७। २९—३०)। अपना आश्रय लेनेवाले भक्तोंको भगवान्‌ने सम्पूर्ण योगियोंमें श्रेष्ठ बताया है (६। ४७)। अतः साधकोंको चाहिये कि वे जो भी साधन करें, भगवान्‌का आश्रय लेकर ही करें।

यह स्वयं परमात्माका अंश है और स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण-शरीर प्रकृतिके अंश हैं। क्रिया और पदार्थका जो आश्रय है, वह स्थूलशरीरका आश्रय है (स्थूलशरीरसे भी दूर धन, मकान, बेटे-पोते, कुटुम्बी, जमीन-जायदाद आदिका जो आश्रय है, वह तो बहुत ही जड़ताका आश्रय है)। विद्याका, अपनी योग्यताका, अपने सद्गुणोंका, अपनी बुद्धिका जो आश्रय है तथा चिन्तनका, ध्यानका, मननका जो आश्रय है, वह सब सूक्ष्मशरीरका आश्रय है। जिसमें व्युत्थान होता है, उस समाधिका आश्रय लेना कारणशरीरका आश्रय है; और समाधि-अवस्थामें जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, अपनेमें जो महत्ता प्रतीत होती है, वह समाधिके कार्यका आश्रय है। ये सभी आश्रय नाशवान्‌के हैं।

जप-ध्यान, कथा-कीर्तन आदिका आश्रय साधनका आश्रय है। 'मैं भगवान्‌का ही हूँ'—इस प्रकार एकमात्र भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ना साध्य (भगवान्)का आश्रय है। साधनका आश्रय लेनेसे साधन करना पड़ता है, पर साध्यका आश्रय लेनेसे साधन स्वतः—स्वाभाविक होता है, करना नहीं पड़ता। नाशवान्‌का आश्रय सर्वथा छूटते ही भगवत्प्राप्तिका अनुभव स्वतः हो जाता है। कारण कि भगवान् तो नित्यप्राप्त ही हैं, केवल नाशवान्‌का आश्रय ही उनके अनुभवमें बाधक है।

आत्मतत्त्व या परमात्मतत्त्वका चिन्तन

(डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)

सभी शास्त्रोंमें विशुद्ध तत्त्व, अद्वय ज्ञान और शुद्ध आत्मा या परब्रह्म परमात्माको एक ही परमतत्त्वका नामान्तर या पर्याय कहा गया है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(श्रीमद्भा० १। २। ११)

अतः भारतीय जीवनमें यह आत्मचिन्तन ही सबका सार-सर्वस्व है। कहा गया है—मनुष्यको प्रतिदिन अपने चरित्रका पर्यवेक्षण करना चाहिये कि मुझमें कितने तो पशुओंके समान अज्ञान, काम-क्रोध आदि दोष हैं और आज मैंने कितने प्रमादपूर्ण काम कर दिये और सज्जन मनुष्यके कौनसे गुण हैं, जिन्हें मैंने अपनाया और कितनोंको मुझे अपनाना चाहिये—

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किं नु मे पशुभिस्तुल्यं किं नु सत्पुरुषैरिति॥

(शार्ङ्गधर-पद्धतिमें भारत-सावित्रीका वचन)

मनुष्य प्रकृति या मायापर विजय प्राप्त करनेके लिये उत्पन्न हुआ है, उसका अनुसरण करनेके लिये नहीं। जब मनुष्य अपने-आपको शरीर समझता है, तब वह विश्वसे अलग हो जाता है और जब अपने-आपको आत्मस्वरूप मानता है, तब व्यापक विश्वरूप हो जाता है।

परमात्मचिन्तनसे परम तत्त्वकी प्राप्तिका मार्ग सुगम हो जाता है। इसलिये उपनिषद् कहती है—अन्य बातोंको छोड़ केवल एकमात्र उस परम तत्त्व परमात्माको जानो—'**तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः।**' (मुण्डक० २। २। ५) कठोपनिषद्‌में नचिकेताको यमराजने इसी तथ्यको समझाया है।

बहुत सारे ऐसे मनुष्य हैं, जिन्हें परमात्माकी चर्चातक सुननेको नहीं मिलती। वे ऐसे वातावरणमें रहते हैं, जहाँ सुबह जागनेसे लेकर रातमें सोनेतक केवल जगच्चर्चा, विषय-चर्चा ही हुआ करती है, जिससे उनका मन आठों पहर परमात्म-चिन्तनकी अपेक्षा संसारकी चिन्तामें डूबा रहता है। फलतः परमात्मतत्त्वके चिन्तनका अवसर ही उन्हें नहीं मिलता और इसलिये उन्हें आत्मज्ञान भी सुलभ नहीं हो पाता। इस आत्म-चिन्तनकी निष्ठा तर्कसे नहीं प्राप्त होती, यह तभी प्राप्त होती है, जब भगवत्कृपासे किसी महापुरुषका सत्संग मिलता है और उनसे अनवरत आत्मचिन्तनका महत्त्व और उसकी विवेचना सुननेका सौभाग्य प्राप्त होता है। आत्मा नित्य ज्ञानस्वरूप है। यह न तो जनमता है, न मरता है। यह अजन्मा और शाश्वत है। इसमें क्षय और वृद्धि-जैसी विकृतियाँ नहीं होतीं। शरीरके नष्ट होनेपर भी यह नष्ट नहीं होता। यह सनातनरूपसे अचल है—'**अचलोऽयं सनातनः।**' (गीता २। २४)

गीता कहती है 'जो आत्माको मारनेवाला या मारा गया

मानता है, वे दोनों ही आत्माको नहीं जानते। वस्तुतः आत्मा न किसीको मारता है, न किसीसे मारा जाता है।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

(गीता २।१९)

जबतक मनुष्यको अपनी नित्यता और निर्विकारताका अनुभव नहीं हो जाता तथा जबतक वह अपनेको शरीर-जैसी अनित्य वस्तुसे भिन्न नहीं समझ लेता, तबतक उसे अनित्य वस्तुसे वैराग्य नहीं होता और न ही उसके अन्तःकरणमें नित्य तत्त्वकी अभिलाषा उत्पन्न होती है।

मनुष्यको जबतक शरीर और भोगोंकी अनित्यता और अपनी आत्माकी नित्यताका बोध नहीं होगा, तबतक उसे परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सकेगी। इसीलिये भोगसुखकी आशाका परित्याग कर परमात्माकी नित्यता एवं सर्वव्यापकताके प्रति दृढ़ अनुभूतिके साथ चिन्तन करना चाहिये।

उपनिषत्कारने रथ और रथीके रूपककी कल्पनाद्वारा चिन्तन करते हुए बताया है कि शरीर रथ है और आत्मा रथका स्वामी है, जिसमें बैठकर वह यात्रा करता है। बुद्धि इस रथका सारथि है। इन्द्रियाँ अश्वोंके समान हैं और मन उनकी लगाम है। विविध विषय उन अश्वोंके विचरणके मार्ग हैं। शरीर, इन्द्रिय और मनके साथ रहनेवाला आत्मा ही विषयोंका भोक्ता यानी भोग करनेवाला है। यही जड भोगचिन्तन ही परमात्मचिन्तनमें बाधक होता है, मनुष्यकी जीवात्माको आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लक्ष्यसे भटकाता है, जिससे आत्मसाक्षात्कार सम्भव नहीं हो पाता। किंतु जो मुमुक्षुजन आत्मचिन्तनमें लीन रहते हैं, वे ही आगे चलकर विज्ञानी अथवा विवेकी होते हैं और इन्द्रिय-रूपी अश्वोंको वशमें करके उनकी गतिको सुधारते हैं, जिससे वे सावधान सारथिके अधीन रहकर निर्दिष्ट सुमार्गपर चलते हैं।

गीता (६।५-६, २९) में भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि जो आत्मचिन्तन करता है, वह कभी विपत्तिमें नहीं पड़ता। वह स्वयं आत्मोद्धारमें समर्थ होता है। मनुष्य स्वयं ही अपना शत्रु होता है और स्वयं ही अपना मित्र। आत्मचिन्तनसे आत्मा योगयुक्त होती है और जो योगयुक्त आत्मासे सम्पन्न है, वह सभी जीवोंको अपनेमें और अपनेको सभी जीवोंमें स्थित देखता है। वही समदर्शी होता है। समदर्शी व्यक्ति ही राष्ट्रिय एकता और अखण्डताके लिये प्रयत्नशील होता है।

जो आत्मचिन्तन करता है, वही अपने मनको वशमें रख सकता है, वही जितेन्द्रिय होता है। सभी समस्याओं और दुःखोंका अन्तिम निदान आत्मचिन्तन—परमात्मचिन्तनसे हो जाता है और फिर परमात्मचिन्तनसे ही मनुष्य परमात्मतत्त्वज्ञ और सर्वज्ञ होकर कृतार्थ हो जाता है। इस विषयको सम्यक् हृदयङ्गम करनेके लिये गीता, भागवत एवं योगवासिष्ठ आदि ग्रन्थोंका बार-बार अनुशीलन करना चाहिये।

स्वयं ही चलो गयो

(श्रीविष्णुदयालुजी बाजपेयी)

धर्मके मिटायबेमें हिरण्यकश्यपको नाश भयो।
धर्मके मिटायबेमें रावण-वंशहू चलो गयो॥
धर्मके मिटायबेमें वेनको विनाश भयो।
धर्मके मिटायबेमें कंसहू चलो गयो॥
धर्मके मिटायबेमें कौरवनकी हार भई।
धर्मके मिटायबे-हेतु असुर-दल दलो गयो॥
'दयालु' जो-जो भयो धर्मको मिटावनहार।
धर्म न मिटाय सको मिटके स्वयं ही चलो गयो॥

व्रत-परिचय

कार्तिकमासके व्रत

[गताङ्क पृ०-सं० ६०२ से आगे]

कोई भी सत्कार्य या धर्म-कार्य विशिष्ट देश, काल, साधु, विद्वान् एवं सद्भावनाके योगसे अत्यधिक पुण्यप्रद हो जाता है। कार्तिक मासके विषयमें कहा गया है कि यह मास अन्य सभी महीनोंसे किसी भी पुण्यकार्यको सहस्रगुणा बढ़ा देता है—

'कार्तिकं सर्वमासेभ्यः सहस्रफलदं विदुः।'

इसीलिये रामायण, भागवत आदिके माहात्म्योंमें नवाह्न-पारायणके लिये कार्तिक मासको ही सर्वप्रथम स्मरण किया गया है—

कातिक माघ चैत चित लाई। नव दिन कथा सुनइ सुखदाई॥

× × ×

ऊर्जे माघे सिते पक्षे चैत्रे च द्विजसत्तमाः।
नवाह्ना खलु श्रोतव्यं रामायणकथामृतम्॥

(वा० रा० माहा० १।३१)

अधिकांश पुराणोंमें कार्तिक-माहात्म्य आया हुआ है। स्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डमें कार्तिक-माहात्म्यके पैंतीस अध्याय हैं। इसी प्रकार पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें प्रायः ३० अध्यायोंमें कार्तिक-माहात्म्य दिया गया है। वैसे तो प्रायः कार्तिक मासके तीसों दिन अत्यन्त पुण्यप्रद हैं और प्रायः प्रत्येक दिन कोई-न-कोई व्रत लगा रहता है, तथापि इस मासके कुछ विशिष्ट तिथियोंके कृत्योंका यहाँपर संक्षेपमें वर्णन किया जा रहा है—

कृष्णपक्षके कृत्य

१-कार्तिक-स्नान—स्नानके बिना कोई भी व्यक्ति शुभ कार्य करनेका अधिकारी नहीं बनता। यह उसके नित्यकृत्योंमें परिगणित है, तथापि पुण्यानुष्ठानकी दृष्टिसे माघ, वैशाख और कार्तिकका नित्य-स्नान अधिक महत्त्वका है। कार्तिक मासमें जितेन्द्रिय रहकर नित्य-स्नान करे, जप करे और हविष्य (जौ, गेहूँ, मूँग तथा दूध-दही-घी आदि) का एक बार भोजन करे तो सब पाप दूर हो जाते हैं—

कार्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः।
जपन् हविष्यभुक् शान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

कार्तिकमें सूर्योदयके पूर्व ही स्नानकर भगवान् सूर्यको अर्घ्यदान देनेका विशेष पुण्य है। अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

कार्तिकमें पूरे महीने रात्रिमें आकाश-दीप जलानेका विशेष फल है। इसमें जो दीपदान दिया जाता है, उसका मन्त्र इस प्रकार है—

दामोदराय नभसि तुलायां लीलया सह।
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे॥

कुछ लोग तुलसी-वृक्ष, पीपल-वृक्षके समीप दीपक जलाते हैं तथा कुछ देवमन्दिरों और अपने घरमें किसी ऊँचे स्थानपर दीप जलाकर लटका देते हैं।

२-अशून्य-शयन-व्रत—कार्तिकके कृष्णपक्षकी द्वितीयाको यह व्रत होता है, जिसमें विशेष रूपसे लक्ष्मी-नारायणकी पूजा की जाती है।

३-करकचतुर्थी (करवाचौथ)—यह व्रत कार्तिकके कृष्णपक्षकी चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थीको किया जाता है। इस व्रतमें भगवान् शिव-पार्वती, स्वामिकार्तिकेय और चन्द्रमाका पूजन किया जाता है। इस व्रतको विशेषकर सौभाग्यवती स्त्रियाँ अथवा उसी वर्षमें विवाही हुई लड़कियाँ करती हैं। गणेशजीकी तिथि भी चतुर्थी ही है। इसमें गणेशजीको अर्घ्यदान दिया जाता है।

४-श्रीराधाजयन्ती—कार्तिकके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको मतान्तरसे राधाष्टमी मनायी जाती है, किसी कल्पमें श्रीराधाजीका आविर्भाव इसी तिथिको हुआ था, जबकि अधिकांशतया भाद्रपदके शुक्लपक्षकी अष्टमीको श्रीराधाजीकी जयन्ती मनायी जाती है।

५-कृष्ण एकादशी—कार्तिकके कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम 'रम्भा' है। इस एकादशी-व्रतको करनेसे सभी पापोंका क्षय होता है और अक्षयलोककी प्राप्ति होती है। इस व्रतकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—प्राचीन कालमें

मुचुकुन्द नामक एक धर्मात्मा राजा थे। उनकी चन्द्रभागा नामकी पुत्रीका विवाह शोभनके साथ हुआ। चन्द्रभागा एकादशीका व्रत रखती थी। एक बार शोभन अपनी ससुराल गया। दशमी आनेपर राजाके यहाँ ढिंढोरा पिटवाया गया कि कल एकादशीका व्रत है, कोई भोजन न करे। शोभनने उपवास कभी नहीं किया था। चन्द्रभागाने कहा—'स्वामिन्! मेरे पिताके राज्यमें एकादशीके दिन पशुओंको भी जलतक नहीं दिया जाता, ऐसी स्थितिमें आप भोजन करेंगे तो आपकी बड़ी निन्दा होगी। चन्द्रभागाके कहनेपर शोभनने व्रत तो कर लिया, पर अनभ्याससे वह खण्डित हो गया। परिणामस्वरूप शोभनकी मृत्यु हो गयी। फिर भी थोड़े-से व्रतके प्रभावसे शोभनको देवलोकमें कुछ समयके लिये सम्मानित स्थान मिला। बादमें चन्द्रभागाने अपने एकादशी-व्रतके दिव्य प्रभावसे कल्पभर तकके लिये अपने पतिके साथ दिव्य लोकोंका आनन्द प्राप्त किया।

६-गोवत्सद्वादशी—द्वादशीको भगवान् श्रीकृष्णने गायोंके बछड़ोंकी विशेष समारोहसे पूजा-अर्चना की थी। इसलिये इसे गोवत्सद्वादशी कहते हैं। इस दिन गायके बछड़े और बछड़ियोंका अर्घ्यादि षोडशोपचारसे पूजन करना चाहिये तथा उनके गलेमें माला आदि पहनाकर उत्कृष्ट भोजन कराकर उन्हें नमस्कार करना चाहिये। इससे मनुष्यका परम कल्याण होता है। वैसे पूरे महीने भर गायोंकी विशेष रूपसे सेवा करनी चाहिये। अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते।
सर्वदेवमयी मातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

७-यमदीपदान—कार्तिकके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको अपमृत्युके निवारणके लिये सायंकाल घरसे बाहर यमराजकी प्रसन्नताके लिये दीपक जलाया जाता है। दीपदानका मन्त्र इस प्रकार है—

मृत्युना दण्डपाशाभ्यां कालेन यमया सह।
त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रीयतां मम॥

८-धनत्रयोदशी—कार्तिकके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको सायंकालके समय एक दीपक तेलसे भरकर प्रज्वलित करे और गन्धादिसे उसका पूजन करके अपने मकानके द्वारदेशमें अन्नकी ढेरीपर रखे। स्मरण रहे, वह दीप रातभर जलते रहना चाहिये। इसी दिन भगवान् धन्वन्तरिकी जयन्ती भी मनायी जाती है।

९-गोत्रिरात्रव्रत—यह व्रत कार्तिकके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीसे दीपावलीतक तीन दिनतक किया जाता है। इस व्रतके लिये गोशाला या गौओंके आने-जानेके मार्गमें एक वेदीपर सर्वतोभद्रचक्र बनाकर उसमें गोवर्धन भगवान्‌की, रुक्मिणी, मित्रविन्दा, सत्यभामा आदि आठ रानियोंकी, नन्दबाबा, बलभद्र, यशोदा, सुरभी तथा कामधेनु गौकी प्रतिमा स्थापितकर उनकी पूजा करनी चाहिये। गौओंको ग्रास देना चाहिये। सौभाग्यवती स्त्रियोंकी पूजाकर उन्हें विविध व्यञ्जन देने चाहिये। तीन दिन व्रतकर चौथे दिन प्रातःकाल स्नानादि करके गायत्रीमन्त्रसे तिलोंकी १०८ आहुतियाँ देकर व्रतका विसर्जन करना चाहिये। इससे सुत, सुख और अखण्ड सम्पत्तिकी उपलब्धि होती है।

१०-हनुमज्जयन्ती—वायुपुराणके अनुसार आश्विन-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी (सौर कार्तिक) को संध्या-कालमें माता अञ्जनीके गर्भसे मेषलग्नमें साक्षात् भगवान् शङ्करने श्रीहनुमान्‌जीके रूपमें अवतार लिया था—

आश्विनस्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे चतुर्दशी।
मेषलग्नेऽञ्जनीगर्भात् स्वयं जातो हरः शिवः॥

इस दिन हनुमान्‌जीका विशेष रूपसे पूजन, शृङ्गार, कीर्तन तथा रामायणादिका पाठ और हनुमान्‌जीकी प्रतिमाको सिंदूरसे उपलेपित किया जाता है।

११-नरकचतुर्दशी—कार्तिकके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी-को नरकचतुर्दशी होती है। इसके निमित्त चार बत्तियोंके दीपकको प्रज्वलित करके नरककी प्रीतिके लिये तथा पापोंकी निवृत्ति-हेतु पूर्वाभिमुख हो दीपदान किया जाता है।

१२-दीपमालिका—दीपावली कार्तिकका एक महत्त्वपूर्ण पर्व है। यह कार्तिककी अमावास्याको मनाया जाता है। इस दिन महालक्ष्मीकी विशेष रूपसे पूजा होती है। आधी रातमें इन्द्र, कुबेर आदिकी भी पूजा होती है। सायंकाल दीप सजाये जाते हैं। कुछ लोग पूरी रात्रि श्रीसूक्तका पाठ करते हैं तथा कुछ लोग दुर्गासप्तशतीके अन्तर्गत महालक्ष्मीचरित आदिका सादर एवं श्रद्धासे पाठ करते हैं। रात्रिके शेष भागमें सूप आदिको बजाकर घरकी अलक्ष्मीको दूर भगाया जाता है।

शुक्लपक्षके कृत्य

१-गोवर्धन-पूजा—कार्तिकके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको भगवान् श्रीकृष्णने गिरिराज गोवर्धन-रूपमें अपनी ही पूजा की थी और अन्नका पर्वत-जैसा भण्डार एकत्रकर पूरे व्रजवासी ब्राह्मणों, मुनियों, दीन-दुखियोंको खिलाकर तृप्त किया था। इस दिन प्रायः प्रत्येक विशिष्ट मन्दिरोंमें छप्पन प्रकारके राजभोग भगवान्‌को निवेदित कर साधु, ब्राह्मण, अतिथि, दीन-दुखियों तथा अनाथोंको खिलाये जाते हैं और गायोंकी सभी प्रकारसे पूजा की जाती है। इस दिन प्रभातके समय गृहके द्वारदेशमें गौके गोबरका गोवर्धन बनाकर उसकी पूजाकर इस प्रकार प्रार्थना की जाती है—

गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक।
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव॥

अन्नकूटोत्सव यथार्थमें गोवर्धनकी पूजाका ही समारोह है।

२-यमद्वितीया—कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वितीयाको यमका पूजन किया जाता है, इससे यह यमद्वितीया कहलाती है। इस दिन यमुनामें स्नान करनेका विशेष महत्त्व माना गया है। पुराणोंमें आया है कि यमराजने अपनी बहिन यमुनाके यहाँ भोजन किया था, अतः अधिकांश लोग अपनी बहिनके यहाँ भोजन कर उसे दानादि सब प्रकारसे संतुष्ट कर उसके क्लेशको दूर करते हैं। इससे भाईकी आयुवृद्धि और बहिनके सौभाग्यकी रक्षा होती है। इसीलिये इसे भ्रातृद्वितीया भी कहते हैं। वणिक्-वृत्तिवाले अपने व्यवहारकी सिद्धिके लिये इस दिन मषिपात्र, लेखनी, यम, चित्रगुप्तकी भी पूजा करते हैं।

३-वैनायकी-व्रत—कार्तिकके शुक्लपक्षकी चतुर्थी तिथिको वैनायकी चतुर्थी होती है। जिसमें भगवान् गणेशकी विशेष उपासना होती है। चन्द्रमाके रहते-रहते ही उन्हें अर्घ्य दिया जाता है और प्रसाद ग्रहण किया जाता है।

४-सूर्यषष्ठी—कार्तिकके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको छठ नामक व्रत होता है। इसमें मुख्य-रूपसे भगवान् सूर्यकी उपासना की जाती है। यह व्रत प्रायः तीन दिनोंतक चलता है। अन्तिम दिन सभी निर्जल व्रत रहते हैं तथा च्यवन मुनि और राजा शर्यातिकी कन्या सुकन्याकी कथा सुनते हैं। कथामें बात आती है कि भगवान् सूर्यकी कृपासे च्यवन मुनि अश्विनीकुमारोंके द्वारा देवकुण्डमें स्नानकर नीरोग और देवताके रूपमें प्रकट हो गये थे। उन्होंने अश्विनीकुमारोंको राजा शर्यातिके यज्ञमें इन्द्रके मना करनेपर भी उत्तम भाग दिलाया था। सप्तमीको प्रातःकाल सूर्यार्घ्य देकर व्रतीलोग व्रत समाप्तकर प्रसाद ग्रहण करते हैं।

५-गोपाष्टमी—कार्तिकके शुक्लपक्षकी अष्टमीको प्रातःकाल गौओंको स्नान कराकर गन्ध-पुष्पादिसे पूजन तथा उनका शृङ्गार करना चाहिये। गायोंको गोग्रास देकर उनकी परिक्रमा करनी चाहिये। उनके चरणरजको मस्तकपर धारण करके ललाटपर लगानेसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। बड़े-बड़े नगरोंमें गोपाष्टमीको बड़ा मेला भी लगता है।

६-अक्षयनवमी—कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमीको व्रत, पूजा, तर्पण और अन्नादिका दान करनेसे अनन्त फल प्राप्त होता है। इस दिनका किया हुआ पूजा-पाठ और दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है। इसीलिये इसे अक्षयनवमी कहते हैं। इस दिन अयोध्या-मथुराकी परिक्रमा प्रारम्भ होती है। व्रजकी पूरी परिक्रमा ८४ कोसकी होती है, जो कई दिनोंतक चलती है। कई लोग साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हुए परिक्रमा करते हैं; विशेषकर गिरिराज-गोवर्धनकी परिक्रमामें ऐसा होता है।

७-धात्रीनवमी और कूष्माण्ड-नवमी— कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमीको धात्रीनवमी और कूष्माण्डनवमी भी कहा जाता है। वैसे तो कार्तिकमें प्रत्येक दिन आँवलेकी पूजा तथा उसे प्रसादरूपमें भक्षण करनेका बड़ा पुण्य बताया गया है, किंतु अक्षयनवमीके दिन प्रायः सभी आँवलेके वृक्षकी पूजा करते हैं और उसीके नीचे भोजन बनाकर परिवारके साथ-साथ भोजन करते हैं, इस दिन साधु, ब्राह्मणोंको भी खिलाते हैं और आत्मकल्याणके लिये गुप्त-दान भी करते हैं। इस तिथिको प्रातःस्नानादि कृत्यकर धात्रीवृक्ष (आँवले) के नीचे पूर्वाभिमुख बैठकर '**ॐ धात्र्यै नमः**' से उसका गन्ध-पुष्पादिद्वारा यथालब्धोपचारसे पूजन कर—

पिता पितामहाश्चान्ये अपुत्रा ये च गोत्रिणः।
ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेऽक्षयं पयः॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेऽक्षयं पयः॥

—इन मन्त्रोंसे आँवलेके वृक्षके मूलमें दूधकी धारा दे और फिर—

दामोदरनिवासायै धात्र्यै देव्यै नमो नमः।
सूत्रेणानेन बध्नामि धात्रि देवि नमोऽस्तु ते॥

—इस मन्त्रसे धात्रीवृक्षको सूतसे आवेष्टित करे। अनन्तर नीराजन और परिक्रमा कर सुपक्व कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) के अंदर रत्न, सुवर्ण या द्रव्यादि रखकर गन्धादि उपचारोंसे पूजन कर उसे संकल्पपूर्वक ब्राह्मणको दानमें दे। इससे समस्त पापोंकी निवृत्तिपूर्वक सुख-सौभाग्यादिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है और पितृगण भी संतृप्त होते हैं। कूष्माण्ड-दानका मन्त्र इस प्रकार है—

कूष्माण्डं बहुबीजाढ्यं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं पितॄणां तारणाय च॥

८-प्रबोधिनी एकादशी—भक्तोंका यह विश्वास है कि आषाढ़के शुक्लपक्षसे कार्तिकके शुक्लपक्षतक चार माह भगवान् अपनी योगनिद्राका आश्रय ग्रहणकर क्षीरसागरमें सोते हैं। अतः उनके द्वारा कार्तिकशुक्ल एकादशीको भगवान् विष्णु एवं तुलसीका षोडशोपचार-पूजनकर रात्रिमें उन्हें जगाया जाता है। इसलिये इसे प्रबोधिनी एकादशी कहते हैं। भगवान्के जागरणका मन्दिरोंमें विशेष समारोह होता है, जो प्रबोधनोत्सव भी कहलाता है। भगवान्की प्रार्थना एवं उन्हें जगानेके मन्त्र इस प्रकार हैं—

ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्यसोमादिभिर्वन्दित वन्दनीय।
बुध्यस्व देवेश जगन्निवास मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्॥
उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव।
गता मेघा वियच्चैव निर्मलं निर्मला दिशः॥
शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव॥

इसीके साथ सुभाषित स्तोत्रपाठ, भगवत्कथा, भजन-कीर्तन आदि भी किया जाता है। भगवान्की विधिवत् पूजा एवं आरती की जाती है तथा भगवान्की शोभायात्रा भी निकाली जाती है। भगवान्के जग जानेके बाद ही सभी धर्मकृत्य प्रारम्भ होते हैं। इसके पूर्व देवशयनीसे लेकर देवोत्थानतक कोई यज्ञादि अनुष्ठान, तीर्थयात्रा, नवीन निर्माण आदि कार्य नहीं होते। विवाहादि कार्य भी नहीं किये जाते। इसी दिन संन्यासियोंका चातुर्मास-व्रत भी समाप्त होता है और उसके बाद वे तीर्थयात्रा आदिपर निकल पड़ते हैं। देवोत्थानके अनन्तर सभी पुण्यकार्य प्रारम्भ हो जाते हैं।

९-तुलसीविवाह—कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको विशेष उत्सवके साथ भगवती तुलसीदेवीकी पूजा होती है। सुन्दर मण्डप बनाकर भगवान् शालग्रामकी स्थापना कर उनके साथ देवी तुलसीका विवाह सम्पन्न किया जाता है। तुलसी-विवाहकी कथा नारद, शिव, स्कन्द, पद्म तथा देवीभागवत पुराणोंमें प्राप्त होती है।

१०-वैकुण्ठ-चतुर्दशी—कार्तिकके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी वैकुण्ठ-चतुर्दशी कहलाती है। इस दिन उपवासकर जितेन्द्रिय रहकर रात्रिमें भगवान् विष्णुकी विशेष पूजा करनी चाहिये। भगवान् नर्मदेश्वरको तुलसी अर्पण करना चाहिये। इससे वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है। इसी दिन विश्वेश्वर और विश्वेश्वरीकी पूजा की जाती है तथा काशीके मणिकर्णिका-तीर्थमें स्नानका विशेष माहात्म्य है।

११-कार्तिक-पूर्णिमा—कार्तिक-पूर्णिमाके दिन कार्तिक मासके व्रतोंकी समाप्ति होती है। इसे महापुनीत पर्व माना जाता है। इस दिन किये गये स्नान, दान, जप, होम, यज्ञ और उपासनाका अनन्त फल होता है। यहाँतक प्रतिदिन प्रातः-स्नान करना आवश्यक होता है। जो पूरे मास तीर्थ आदिमें स्नान करनेमें असमर्थ होते हैं, वे भी प्रायः इस दिन गङ्गा, यमुना, सरयू, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी आदि पवित्र नदियोंमें सूर्योदयके साथ ही स्नानकर यथाशक्ति दान, भगवान्का पूजन करते तथा कथा आदि सुनते हैं। कुछ लोग कार्तिकके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिसे कार्तिक-पूर्णिमातक वाल्मीकीय रामायण, रामचरितमानस और भागवत आदि सद्ग्रन्थोंकी कथाएँ नवाह साप्ताहिक पारायणके रूपमें सुनते हैं। भगवत्प्रेमी भक्तगण तीर्थोंमें कल्पवास भी करते हैं। इस दिन यदि कृत्तिका नक्षत्र हो तो यह तिथि स्नान-दानादिके लिये बहुत ही उत्तम मानी जाती है, यह महाकार्तिकी कही जाती है। इस दिन चन्द्रोदयके समय षट्-कृत्तिकाओं (शिवा, सम्भूति, प्रीति, संतति, अनसूया और क्षमा) का पूजन तथा भगवान् कार्तिकेयका दर्शन भी किया जाता है। इसी दिन संध्या-समय

त्रिपुरोत्सव करके दीपदान भी किया जाता है। इससे पुनर्जन्म आदिका कष्ट नहीं होता। कार्तिक-स्नानका उद्यापन भी सम्पन्न करना चाहिये।

इस प्रकार नियमपूर्वक कार्तिक मासके व्रतोंका पालन करनेवालेकी विशेष आध्यात्मिक उन्नति होती है और भगवान्के चरणोंमें भक्ति उत्पन्न होकर दिव्य ज्ञान उत्पन्न होता है। इस महीनेमें साधकोंको श्रीमद्भगवद्गीताका पाठ नियमपूर्वक प्रतिदिन करना चाहिये, इससे प्रसन्न होकर भगवान् उसके हृदयमें ज्ञानदीप जलाकर अपनेको प्रकाशित करते हैं। गीता (१०। ११) में कहा गया है—

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०४८ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०४९ तक रही है।)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पूर्ववत् पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या २२,७०,३५,००० (बाईस करोड़ सत्तर लाख पैंतीस हजार)।

(ख) नाम-संख्या ३,६३,२५,६०,००० (तीन अरब तिरसठ करोड़ पचीस लाख साठ हजार)।

(ग) षोडश नाम-मन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंजनगाँव, अंबरनाथ, अकबरपुर, अकराबाद, अकोटफैल, अकोला, अगौस, अघीया, अघोड़ा, अचलपुर, अजनास, अजबपुरा, अजनेरा, अजमेर, अजापुरा, अटेर, अतनूर, अतर्रा, अथाईखेड़ा, अधीया, अघोड़ा, अनगौर, अपाण्डा, अफजलपुर, अमऊजासरपुर, अमनपुर, अमरा, अमरावती, अमलदा, अमौली, अमृताखास, अम्बाजोगाई, अम्बाला छावनी, अम्बाला-सिटी, अयोध्या, अरड़का, अरनिया चौहान, अरई, अलकापुर, अलवर, अलसीसर, अलीगढ़, अलोद, अल्लागंज, असदपुर, असनना, अहमदनगर, अहमदाबाद, अहेरी, आंगरोद, आगरा, आगूचा, आजमगढ़, आदर्शचवा, आबूरोड, आमगुड़ी, आमलीझाड़, आरंग, आसीद, आसैर, इंगोहटा, इंदौर, इटारसी, इटावा, इदगा, इलाहाबाद, इस्माइलगंज, ईश्वरपुर-साई, उचित (गढ़), उजलपुर, उदनाबाद, उदयपुर, उदयाखेड़ी, उरई, उरगा, ऊना, ऋषभदेव, एटा, ओझाके छपरा, ओड़ा, ओड़ेकेरा, ओढ़नपुर, ओमनगरी, ओरछा, ओलाडगंज, ओलादन, औरैया, कंधला, कगड़ी, कचलाना, कचीन, कटलामानगंज, कटसारी, कटिहार, कठूमर, कडूरकिला, कड़लू, कदवाल, कनकापुर, कनेछणकलाँ, कन्नौज, कन्नौद, कन्वाली, कन्हौली, कपासन, कबीरनगर, कमताना, कमासिन, करतल, करडा, करणपुर, करमागजा, करसोग, करहरिया, कराय परशुराय, करेड़ा, करेली, करौरा, करौली, करौलीराम, कलकत्ता, कलिवरम, कलुँगा, कल्याणगाँव, कल्याणपुर, कविलपुर, कसहा, कांकेर, कांगपोकरी, काँटाबाजी, काँधला, काँधाचही, कादरगंजपढ़ेरा, कानपुर, कानपुरनगर, कानापार, कारंजा, कारंडा, कालन्द्री, कालाआम, कालाडेरा, काल्बाहल, कालीकट, काशीपुर, कासगंज, किताडीह, किरवाड़ा, किशनगंज, किशोरगंज, कीरीबुरू, कुंजनपुर, कुँडल, कुँवरपुर, कुँवाखा, कुँवारपुर, कुआड़ी, कुचामनसिटी, कुटिलिया, कुम्हियावाँ, कुरमाली, कुल्लू, कुसुम्भी, केउटा, केकड़ी, केज, केवलारी, केशोपुर, केसरपुरा, केसली, कैथल, कोकर,

कोकर-राँची, कोचस, कोटद्वारा, कोटमीसुनार, कोटरा, कोटा, कोटाडेम, कोटिपूडा, कोठीसर, कोठी-सरसई, कोठीसेर, कोड़रा, कोदण्डा, कोनाग, कोमाखान, कोरबा, कोरबा-दर्री, कोलाहलपुर, कोल्हापुर, खंडवा, खन्ना, खम्भात, खगौल, खजूरी, खजूरीरूण्डा, खडकी, खडगपुर, खड़हरा, खड़ावदा, खमगाँव, खमरिया, खरकड़ीकलाँ, खरगापुर, खरगोन, खरदोनकलाँ, खरवा, खरसियाँ, खरसुलिया, खरौनीबाजार, खलारी, खलीलाबाद, खवासपुरा, खातेगाँव, खानगाँव, खालवा, खितौली, खिरनी, खींवसर, खुटार, खुदागंज, खुरहान-मिलिक, खुरूसलेंगा, खुर्जा, खुन्ता, खेडलीरेल, खेड़की, खेड़की-ब्रह्मनान, खेड़ीराम, खेरोट, खैरथल, खैरा, खैरागढ़, खोजौली, खोड़ी-पट्टी-लोरतू, खोड़ी-लोस्तू, खौड़, गंगधार, गंगरार, गंगरोर, गंगानगर, गंगापुर सीटी, गंगौर, गंजबासौदा, गच्छई, गढ़पुरा, गढ़बसई, गढ़मोरा, गढ़ा, गणेशबाजार, गनपतगंज, गनेड़ी, गया, गरसाहड़, गरोठ, गल्लाटोला, गाँधीग्राम, गाजियाबाद, गायत्रीनगर-पालनपुर, गुण्डरदेही, गुडगुर्की, गुडेबल्लूर, गुढ़ा, गुड़गाँवा, गुना, गुराड़ियाजोगा, गुलबर्गा, गुलवारकोठार, गुलाबझरी, गोंडा, गोइठाहाँ, गोइली, गोड़हिया नं० १, गोनपिया, गोनौन, गोनौली, गोरखपुर, गोला-गोकरननाथ, गोविन्दगढ़, गोविन्दपुर, गोसाईपुर, गोसाईगंज, गौरीकुण्ड, ग्वालियर, घरौडा, घाटशिला, घाटाखेड़ी, घाटाविलोह, घाटासेर, घुटकुनवापारा, घैणी, घोंघा, घोंघौर, घोड़नदी, घोड़ेगाँव, चंडीगढ़ चंडीस्थान-सुग्गी, चंडेश्वर, चंडौस, चंदला, चंदा, चंद्रनगर-कामल, चन्द्रपुरकलाँ, चन्द्रहटी, चम्पागुडीबाजार, चक, चकवाड़ा, चक्काबाँध, चनवथ, चनारथलकलाँ, चान्दन, चाँदबावड़ी, चिंगावनम, चिंचोली, चिन्हारा, चिन्हाराम, चिकोड़ी, चितभवन, चित्रकूटधाम, चित्रगुप्तनगर, चियान्की, चियाबारी, चिरचारी, चिराँवडा, चिराँवदा, चिलकहर, चिलकिस, चिलौली, चीचगढ़, चूड़ी-अजितगढ़, चूरू, चैनपुर, चोपड़ा-न्योलीकोट, चौंडी, चौपड़ा, चौबयाना, चौधरीगरोठ, चौरई, चौरा, चौरू, छकना, छतिहा, छत्रपुरा, छनछड़ा, छापड़ा, छापर, छानीबड़ी, छिंदमोग, छिंदवाड़ा, छिनका, छिपैटी, छीलरो, छुरा, छोटी-सादड़ी, छोटी-हल्द्वानी, जंगलोट, जगदलपुर, जगदीशपुर, जगदीशपुर-बघनगढ़ी, जगाधरी, जदुपट्टी, जनोटी-पालड़ी, जबरासर, जबलपुर, जमनियाँ रे० स्टे०, जमालपुर-ध्यान, जमीरापाट, जमुआ (नई बस्ती), जयनगर, जयपुर, जरौली, जलगाँव, जाखल, जाजोता, जाजोद, जान्हेरा, जामा-जोधापुर, जालाना, जालोर, जालौन, जियाराम-राघोपुर, जुलियासर, जेर, जैतपुर, जैतापुर, जैसनी, जोगिनी, जोगियारा, जोजवा, जोधपुर, जोबनी, जोरावरडीह, जौनपुर, ज्योलीकोट, ज्वालागढ़, झंडीचौड़, झखरावल, झड़गाँव, झलोरी, झाँसड़ी, झाँसी, झाबुआ, झालरापाटन, झालावाड़, झिकटिया, झिकटिया-सकुन्दी, झिटिया, झिलाय, झींकपानी, झीझक, झुन्झूनू, झुमरीतिलैया, झोटड़ा, टनकपुर, टहरौली, टिहोली, टूडावेह, टेहटा, टोंटरी, टोरड़ा, टोला शिवनराय, ठाणे, डकाचा, डटीला, डबरेढ़ा, डवाड़, डहरौली, डाकपत्थर, डानियाकी कोटड़ी, डाबड़ी, डाह, डिडवाड़ी, डिलारी, डिहरी-ओन-सोन, डीसो, डुगरवार, डुमरवार, डूँगरपुर, ढाबबथुआ, ढिमानी, ढेंगाडीह, ढोसर, तखतगढ़, तमलूर, तरौका, ताखलाकलाँ, ताजपुर, ताजपुर-नौबस्ता, तालीकोटी, तालेन, तासगाँव, तिकुनिया, तितरोद, तिरुनेलवेली, तिरोजपुर, तिलहर, तिलोई, तिलोकपुर, तीखमपुर, तीगाँव, तीतरो, तीलोटी, तुनी, तुसरा, तेंगली, तेनालि, तेमुड़ा, तोगलूर, तोरनी, थड़ोली, थानखमरिया, थाना-भवन, थुमहा, थोई, दमोह, दरभंगा, दर्रीपारा, दरौली, दलसिंहसराय, दाउदनगर, दादरी, दादिया, दानपुर, दापोरी, दामोदरपुर, दारिमाधव, दावणगेरी, दिगोई, दिमनी, दिमौली, दिलकुशा, दिल्ली, दिलोखरा, दुदवाला, दुभणा, दुरेन्दा, दुलावनी, देउराली-मसहार, देरगाँव, देवकर, देवकुली, देवखैरा, देवघर, देवजरा, देवठी, देवढ़ी, देवरा, देवरीकलाँ, देवरीनाहरमऊ, देवलीकलाँ, देवसर, देवीमहल्ला, देहरा, देहरादून, दोचीघाट, दोडवाड, दोनपाह, दौसा, धकजरी, धनगावाँ, धनबाद, धनाड़ी, धमधा, धमनापायक, धमोतर, धर्मापुर, धरौदा, धामनोद, धुलाबाड़ी, धेपुरा, धोंडराई, धोइन्दा, धौलपुर, नंदनपुरी, नगलामुर्ली, नजफगढ़, ननौर, नयागाँव, नयानगर, नयापुरवा-मजरा-थाँभा, नयीटिहरी, नयीदिल्ली, नरगोड़ा, नरडान, नरडाना, नरयावली, नरला, नरवर, नरवाँ, नरहरवाशुक्ल, नलूजली, नवडीहा, नवरगाँव, नवलपुर, नवादा (गिद्धौर), नवाशहर-दोआबा, नसीबाबाद,

नसीराबाद, नागपुर, नागौर, नाचनी, नाढ़ी, नादिया, नानौता, नापासर, नामकमता, नायला, नारनौल, नारायणपेरु, नारेहड़, नावला, नावली-बृन्दावन, नाहन, निधवा, निटरी, निवाली, नीमच, नीमेड़ा, नेवढ़ी, नेवरी, नैमिषारण्य, नोयड़ा, नोहर, नौगवाँ, नौगवाँ-पकड़िया, नौताना, नौधरिया, नौबस्ता, न्यादरपुर, न्यालकल, न्यूडांग (श्रीनगर), न्हावी, पंचेवा, पंडरिया, पंडरीतराई, पंढरपुर, पंतनगर, पकरहट, पचाम्बा, पचेरी बड़ी, पचौर, पचौरी, पटना, पटना-सीटी, पटाजन, पटोरीबसंत, पड़रीखुर्द, पतिगोविन्दपुर, पतुलकी, परसरामपुरा, परसरमा, परसोंदा, परासनी, पलासडीह, पलियाँकलाँ, पलेई, पलोहाबड़ा, पसगवाँ, पांडातराई, पांडुकेश्वर, पांडेटोला-लालगढ़, पांडेपुर, पाटवा, पाटौदी, पानीपत, पार्वतीपुर, पारसौल, पालम, पालमपुर, पालवी, पालियावाल, पाली, पाली-मारवाड़, पासवाड़ा, पिंपलनेर, पिपरहिया फार्म, पिपरा, पिपरिया, पिपरीमरियानी, पिपलाट, पिपलियाबाजार, पिपलीबाजार, पिलखुवा, पीताम्बरपुरा, पीपरीगहरवार, पीपली, पीरोचौक, पुनहा, पुनाहना, पुरकाजी, पुरहराटोला, पूँछ, पूनसीसर, पूना, पूराबक्सराम, पूरेचेरशाह (खनियारा), पेंड्रारोड, पेटलाद, पेशोक, पैंची, पोखरखाली, पोखरी, पोरबन्दर, पोलायखुर्द, पौछीना, प्रानपट्टी, प्यारेवाला, फतेहगढ़, फतेहपुर, फरह, फरहदा, फर्रूखाबाद, फागी, फुलहर, फुलेरा, फूलपुररामा, फैजाबाद, बंसरामऊ, बअलिया, बकेवर, बगरू, बगही, बगौरागढ़, बटईकेला, बटाला, बड़कीखड़रवार, बड़वानी, बड़ागाँव, बड़ौत, बदनपुर (औरैया), बदली, बनकट्टी, बनत, बनबसा, बनवारी-बसंत, बनियामवाड़ी, बनी, बनीडीह, बमनाला, बमरोली, बम्बई, बयाना, बरनमहगवाँ, बरला, बरवाड़, बरवाडीह, बरवाही, बरहापुर, बरही, बरालोकपुर, बरूही, बरेली, बरोरी, बरौंधा, बरौनी, बलदेवनगर, बलरामपुर, बलौदाबाजार, बसन्त, बस्ती, बसौनी, बहड, बहरोड़, बहूफोर्ट, बाँकी, बाँकीमोगरा, बाँगरोद, बाँदा, बाँदीकुई, बाँसी, बाकुड़, बागसरा, बागोरी, बाजारपेठ, बाडा, बादली, बानसी, बानीपुर, बानूछपरा, बाप, बाबरा, बाबरी, बाबल, बामनियाँकलाँ, बामोरीशाला, बारपुजियागयली, बाराद्वार, बारी, बारौली, बालसी, बालापुर, बालूमाजरा, बालेसर, बालोतरा, बालोद, बासड़ीखुर्द, बिग्गाबासरायसरा, बिजनौर, बिजवाड़िया, बिरलाग्राम, बिरौल, बिलासपुर, बिलौद, बिशौनी, बिसरा, बीकानेर, बी०कैथी, बीड, बीदर, बीना, बीलवा, बुंदेली, बुडास, बुर्ज, बुर्ज-चक, बुरदा, बुरहानपुर, बुलन्दशहर, बूँदी, बूरमाजरा, बेतिया, बेमेतरा, बेला, बेला-सद्दी, बेवर, बैतूलबाजार, बैरी, बैसा, बोकठा, बोची, बोरडेम, बोरावड़, बोरोजालेंगा, ब्रह्मपुर, ब्रह्मपुरी, ब्राह्मण बिगहा, भंडारा, भंडारो, भगदरी, भगवानपुर, भगौसा, भटकरजा, भटगाँव, भटवा, भटेगाँव, भदलिया-नोसर, भदोरा, भमावद, भरखर, भरतपुर, भरदागोड़, भरावदा, भरौंह, भादरा, भिण्ड, भिलाई, भिवापुर, भीखमपुरा, भीमगंजमण्डी, भुआ-बिछिया, भुरकी, भुसावर, भेड़वन, भैंसड़ीबाजार, भैसाना, भोजासरबड़ा, भोपाल, भ्रमरपुर, मंगलाज-किलोदा, मंगलौर, मंजेश्वर, मंझरिया, मंडेला, मंदर, मंदोरी, मऊजंक्शन, मकरेड़ा, मखमेलपुर, मछलीशहर, मझवारी, मझिला, मढ़ा, मड़ावरा, मणिपुर, मतवाना, मथुरापुर, मदनगंज, मद्रास, मदुरै, मधेपुर, मनकापुरबाजार, मनमाड, मनासा, मनिगाँव, मनिय, मनिया, मनियाँमाऊ, मरमी, मरारीटोला (बिरसा), मल्कलीपुर-डेवढी, मलगवाँ, मलसीसर, मलिनियाँदिरा, मल्लडीहा, मल्लावाँ, मल्हारगढ़, मवइया, मवई, मवाली, महकट्टी, महथ, महथी, महदेवापुर, महनियावास, महरागाँव, महराना, महावीरनगर-देगाडीह, महासमुन्द, महिशारि, महुआखेड़ा, महुगाई, महूँ, महेशपुर, मांडल, मांडलगढ़, मांडवी, माचाडी, माछरा, माडवझर, माधोपुर, माधोपुर-गोविन्द, मानसा, मायागढ़ीस्टेट, मायना, मार्कंडा, मालपुर, मालिमपुर, मालीपुर, मित्तई, मिर्जापुर, मिसीमिर्जापुर, मिस्टनगंज, मिहोना, मीरपुर (सिरोही), मीरापुर, मुँगावली, मुँगो, मुंडीवाड़ा, मुनस्यारी, मुरवागढ़, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुत्तौर, मुरहद्दी, मुरादाबाद, मुल्वाना, मुल्लापुर, मुश्ता, मुहम्मदाबादगोहना, मूढी, मूरतपुर, मेढ़कुरी, मेथौरा-बिशनपुर, मेदनीपुर, मेरठ, मेहन्दीपुरबालाजी, मेहराणा, मैंगलगंज, मैनपुरी, मोतीहारा, मोदीनगर, मोरारपुर, मोहनगढ़, मोहनियाँ, मोहम्मदगढ़, मौजपुर, मौड़ा, मौधिया, म्याऊँ, यमुनानगर, यवतमाल, येवदा, येवला, योगाश्रम, रंगत, रघुनाथपुर, रघुनाथपुरा, रजऊ, रजपुरा, रठेरा, रतनगढ़, रतनपुर, रत्नापुर, रतलाम, रबूपुरा, री (लहार), रसनाल,

रसीदपुर, रहुआ-संग्राम, राँची, राउरकेला, राजनाँदगाँव, राजपिंपरी, राजपुरा, राजबोरा-सम्बरपुर, राजमहल, राजसमन्द, राजिय, रानीखेत, रानीपुर, रामकुण्डा, रामचौरा, रामधनपुर, रामनगर, रामनारायण, रामनारायण-तेतरिया, रामपुर, रामपुर-डिस्टिलरी, रामपुरा, रामसिंहनगर, रायगढ़, रायगढ़जबंध, रायथल, रायपुर, रायपुर-जागीर, रायपुर-मारवाड़, रायसिंहनगर, रावतभाटा, रावतसर, रासीका डेरा, रिंगणी, रिशरा, रीवाँ, रुड़की, रैपुरा, रैल, रोंसरा, रोसवाँ, रोहतक, रोहनियाँ, रौनिया, लंका, लक्ष्मीनगर, लक्ष्मीपुर, लक्ष्मीपुर-ककढ़िया, लखनऊ, लखनपुर, लखीसराय, लखोरिया, लगुचा, लरछड़सर, लवाइच, लश्कर, लस्करी, लाखनडिहरा, लाखेरी, लाडनूँ, लातूर, लालगढ़, लालपुर, लालयर, लालसिंग, लालसोर, लालाछपरा, लावन, लिमतरी, लुहारी, लुहारीझाझरा, लुहासोहा, लूणकरणसर, लोईंग, लोईसिंहा, लोपड़ा, लोहई, लोहना, लोहाघाट, लोहार्दा, लोहियान, लोहरफरना, लौर, वजीरपुर, वरमाठाकुरवाड़ी, वरही, वरोही, वर्धा, वलीपुरटाटा, वाँसी, वाकरोल, वाराँ, वाराणसी, वारासिवनी, विकाराबाद, विक्रमपुर, विक्रोली (पूर्व), विजयनगर, विजयवाड़ा, विदिशा, विरासनी, विरौधी, विरौल, विशाखापट्टनम्, विशाड़, विस्टान, वीरभानपुर-कैथी, वीरमपुर, वेणीनाग, वैरवार, वैशालीनगर, व्यावर, शहडोल, शहापुर, शाजापुर, शामली, शाहपुर, शाहपुर-पटोरी, शाहबाद-मारकण्डा, शाहोपुर-बरमा, शिकारपुर, शिमला, शिरपुर, शिवगंज, शिवगढ़, शिवपुर, शिवपुरकलाँ, शिवरीनारायण, शिवाड़, शेरकोट, शेरुणा, शेवतर, शोधी, शोभासर, शोलापुर, श्यामपुर, श्रीगंगानगर, श्रीपेरुम्बूदूर, श्रीरामपुर, श्रीवैकुण्ठम्, संग्रामगढ़, संजोली, संदाना, सकतपुर, सकरा, सकरामा, सकरी, सक्ती, सघोट, सतगढ़-मंजेड़ा, सतजोरी, सतीपुरा, सथरा, सदाशिवगढ़, सदीसोपुर, सनईचौराहा, सन्ना, सपोटरा, सबजपुरा, समलखा, सरत, सरवाड़, सराजाँ, सरियाँव, सरैधी, सर्रा, सलखुआबाजार, सलावद, सलेमपुर, सवजपुरा, सस्तरा, सहरना, सहारनपुर, सांखलोंका बास, सांगली, सांगाखेड़ाकलाँ, सांदगाबहाली, सांभरलैक, साखरवाड़ी, सागर, सातारा, सादूलपुर, साधपुर, साबनेर, सावंगाजहागीर, सायला, सारंगपुर, सालमगढ़, सालहली, सालिगपुर, सालोन बी०, सावली, सासनी, सासाराम, साहिबगंज, सिंगाभेड़ी, सिंघपुरा, सिंहुज, सिंहेश्वर, सिगौलीचारभुजा, सिथराबुजुर्ग, सिद्धवरौलिया, सिमरिया, सिमरी, सिमरोल, सियरहार, सिरगधरी, सिरसूँ, सिलीगुड़ी, सिवनी, सिहोरा, सीकर, सीतापुर, सीतामऊ, सीतामढ़ी, सीथल, सीसवाल, सीसवाली, सीसोटार, सीहोर, सुखिबिगहा, सुजानगढ़, सुजानपुरा, सुठालिया, सुतरी, सुतारचाल-लालबाग, सुनगाँव, सुयालवाड़ी, सुरनेर, सुसनेर, सुरौठ, सुलह, सुवाँसा, सूरजपुर, सूरत, सूर्यगढ़ा, सूलिया, सेंठा, सेंदुरस, सेरूकहा, सेवर, सेहरी, सोईकला, सोनगढ़, सोनपुर, सोनपुरराज, सोनवर्षा, सोनवर्षाराज, सोनीपत, सोनीहरलाल, सोयदवे (ब्राह्मण), सोहना, सोहागपुर, सोहागमाड़ो, स्थाणा, हंसकेर, हजारीबाग, हटनी, हथीदह, हथीन, हदरहटा, हनुमन्ती, हमीरपुर, हरणखेड़, हरदी, हरदोई, हरनावदा, हरनी, हरनौत, हरपुररेवाड़ी, हरसूद, हरिद्वार, हरिपुरडाक, हरिपुरडीहटोल, हरिहर, हरिहरपुर बेदौलिया, हरीपुरनायक, हरीपुरा, हल्द्वानी, हसनबाजार, हसामपुर, हसुवा, हाँफा, हाँसी, हाटाबाजार, हाथरस, हाथीगढ़, हाथीभाटा, हापुड़, हावड़ा, हिंडौनसिटी, हिसार, हिसार ड्योढ़ी, हीनूँ, हुमायूँपुर, हुरला, हूर, हेमड़ा, हैठीवाली, हैदरगढ़, हैदराबाद, होशंगाबाद, होशियारपुर, होसिर, ५६ ए० पी० ओ०।

आनन्द

आनन्द चाहोगे और लगे रहोगे दुःखमय विषयोंकी उपासनामें तो आनन्दकी प्राप्ति कभी होगी ही नहीं। क्योंकि जैसे बालूमें तेल नहीं है और जलमें घी नहीं है, वैसे ही विषयोंमें आनन्द नहीं है।

आनन्दमय बनना चाहते हो तो आनन्दमय भगवान्‌के समीप रहो—भगवान्‌की उपासना करो। जैसे अग्निके समीप अवस्थान करनेसे शरीर गरम और बरफके पास बैठनेसे ठंढा हो जाता है, वैसे ही भगवान्‌की संनिधिसे सब कुछ आनन्दमय हो जाता है।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गायने बहुतोंकी जान बचायी

भारतीय सनातन-परम्परामें गायकी बड़ी महिमा है। अपनी उपयोगिता एवं धार्मिक पृष्ठभूमिके आधारपर यह हमारी माता है। भोला मुख बड़ी-बड़ी आँखें तथा इसकी पवित्र देवमयी देह हमारे हृदयमें बरबस श्रद्धा उत्पन्न कर देती है। इसके बिना भारतीयता अधूरी है। गो-धनकी कमीका तात्पर्य होगा, हमारी संस्कृतिका पतन। लेकिन कितना दुःख होता है यह जानकर कि गायपर अत्याचार दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। कोई इसे कसाईखाने भेज रहा है तो कोई इसे पीटता है और कभी-कभी आतंकवादी इसपर गोलियाँ बरसा-बरसाकर अपनी पैशाचिकताका परिचय देते हैं।

ऐसी ही एक घटना १० नवम्बर १९९१ई० की है। हरियाणा राज्यके सिरसा नगरमें उग्रपंथियोंने आतंक पैदा करनेके उद्देश्यसे गोलीबारी आरम्भ कर दी। गोलियाँ वहाँ खड़े व्यक्तियोंको लगने लगीं। वहींपर एक गाय भी थी, उसे भी कुछ गोलियाँ लगीं। गाय तड़पने लगी और उग्रवादियोंका मार्ग अवरुद्ध करने लगी। वह बार-बार उनकी ओर होकर छटपटाती रही। क्रोधावेशमें उन लोगोंने गायकी ओर ही स्टेनगनोंका रुख मोड़ दिया। बेचारी गाय कबतक उनके रास्तेमें खड़ी रहती। गोलियोंसे उसका शरीर छलनी हो गया। रुधिरकी धारा बह चली। सारी धरती लाल हो गयी, किंतु तब भी उनका हृदय नहीं पसीजा। गौने वहींपर अपने प्राणोंका त्याग कर दिया। इसी अवधिमें कई लोग अपने प्राणोंको बचानेका अवसर पाकर वहाँसे भाग निकलनेमें सफल हो गये। प्रत्यक्षदर्शियोंका कहना है कि उस समय यदि गाय अपना बलिदान न देती तो और भी चौदह-पंद्रह लोग मौतके मुँहमें चले जाते। गायने इस प्रकार अपना मातृत्व निभाया। जो काम कई लोग मिल-जुलकर न कर सके, वह काम अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर गोमाताने कर दिखाया। इसीलिये वहाँके स्थानीय जनोंने उस स्थलपर गायकी समाधि बनानेका निर्णय लिया है।

उपर्युक्त दर्दनाक घटनासे प्रत्येक धर्मप्रेमी तथा सहृदय व्यक्ति भी चीत्कार कर उठता है, किंतु कैसे पत्थर-दिल इंसान हैं वे, जो केवल अपने निजी स्वार्थ तथा मिथ्या आहारकी संतुष्टिके लिये मौतकी क्रीडामें व्यस्त रहते हैं। गाय-जैसे पवित्र तथा भोले जीवकी हत्याकर उनका कौन-सा मनोरथ पूर्ण होता होगा, यह तो वही जानें, लेकिन धर्मसे ऐसा खिलवाड़, निरीह प्राणियोंपर ऐसा अत्याचार, निश्चय ही घोर पतनका कारण बनता है। गाय हमें घी, दूध, खाद देती है, गाय हर तरहसे सभीके लिये उपयोगी है। इसकी पूजाका— सेवाका महत्त्व शास्त्रोंमें विस्तारसे प्रतिपादित है। किसी भी प्रकारसे इसे कष्ट देना महापाप है। और फिर यह शहीद हुई गाय तो गर्भवती भी थी। इसे मारनेवाले दोहरे पापके भागीदार हैं।—हरदेवकृष्णजी

(२)

नासै रोग हरै सब पीरा

बात अक्तूबर सन् १९७५ की है। उस समय मैं पशु-चिकित्सालय, घोसीमें कार्यरत था। दिनाङ्क १४ अक्तूबर १९७५ को मुझे एकाएक तीव्र ज्वर हो आया। मस्तक तथा शरीरमें अपार पीड़ा होती थी। मेरा परिवार भी साथ नहीं था। मेरे बगलके कमरेमें घोसी-चिकित्सालयके प्रयोगशाला-प्राविधिज्ञ श्रीपाण्डेयजी रहते थे। वही मेरी देखभाल करते थे। घोसीके स्वास्थ्य-अधिकारियोंने मेरे स्वास्थ्यका परीक्षण किया और दो दिनोंतक उनकी दवा भी चलती रही, किंतु स्वास्थ्यमें कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। अब मुझमें बिस्तरसे उठनेकी शक्ति भी नहीं रह गयी थी। बिस्तरमें पड़ा-पड़ा मैं बहुत परेशान हो गया था।

श्रीरामचरितमानसमें मेरी अतीव श्रद्धा रही है, अतः श्रीरामचरितमानसको मैं प्रायः अपने सिरहाने रखे रहता था तथा श्रीहनुमान्‌जीका स्मरण भी करता रहता था। अशक्त होनेके कारण मैं पाठ तो कर नहीं पाता था, किंतु मुझे ध्यान बना रहता था। कुछ दिन ऐसे ही बीत गये। मुझे स्नान न किये पंद्रह दिन होनेको आये थे। उस दिन मैं सिर-दर्दसे कराह रहा था। कई दिनोंसे नींद नहीं आयी थी। रातके लगभग साढ़े दस बजे थे। मैं तन्द्रा-अवस्थामें था, उस समय मुझे एकके बाद

एक भयंकर दृश्य दिखायी पड़ने लगे। एकाएक मुझे ऐसा लगा कि बाहर अनेक कुत्ते रो रहे हैं। इसके बाद आँधी आने-जैसी आवाज सुनायी पड़ी और उसके शान्त होते ही मुझे ऐसा लगा कि मेरे सिरकी ओर मेरे आराध्य देव खड़े हैं। अशक्त होनेके कारण मैं उठकर उन्हें देख भी नहीं सकता था। लेटे-ही-लेटे मैंने प्रार्थना की कि 'प्रभो ! अब इससे अधिक सामर्थ्य मुझमें नहीं है।' संयोगसे इसी बीच उन प्राविधिज्ञ पाण्डेय महोदयने दरवाजा खोलकर अंदर प्रवेश किया और नित्यकी भाँति मेरा सिर सहलानेका आग्रह करने लगे, पर मैंने ऐसा न करनेका अनुरोध किया, क्योंकि उस समय मेरे शरीरमें कहीं भी किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं थी और ज्वर भी नहीं था। मेरे शरीरमें अजीब स्फूर्ति-सी आ गयी थी। तत्पश्चात् मैं स्वास्थ्य-लाभके लिये अपने निकट-सम्बन्धी एक मित्रके पास चला गया, जो ग्राम दुवारीमें रहते थे। उस दिन मंगलवार था, उन्होंने मुझसे पथ्य लेनेको कहा, परंतु मैंने यह कहकर इनकार किया कि मंगलवार-व्रतके कारण मैं अन्न नहीं ग्रहण करूँगा। किंतु उनके विशेष आग्रहपर थोड़ा-सा पथ्य मुझे लेना ही पड़ा। अचानक रात्रिमें मेरे शरीरकी पीड़ा एवं ज्वर पूर्ववत् हो गये। दूसरे दिन दवा चली, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। मैंने इसे मंगलवार-व्रत-भङ्गका दण्ड ही समझा। इसपर वे अपनेको दोषी मानकर पश्चात्ताप करने लगे। किंतु मैंने उन्हें आश्वस्त किया और उनसे वहीं बैठकर हनुमानचालीसाका पाठ करनेके लिये कहा। सायंकाल लगभग सात बजे वे स्नान करके हनुमानचालीसाका एक सौ बार पाठ करनेका मानसिक संकल्प करके बैठ गये। पाठ जैसे-जैसे बढ़ता जा रहा था, मुझे आराम भी महसूस होता जा रहा था। मैं श्रद्धा एवं ध्यानपूर्वक पाठ सुनता रहा। लगभग साठ पाठ होते-होते मेरे शरीरकी सारी पीड़ा प्रायः समाप्त-सी हो गयी। ग्यारह बजे रातमें पाठ पूर्ण हुआ, उन्होंने भगवान्‌की आरती उतारी। पश्चात् मुझे प्रसाद देकर जब उन्होंने मेरे शरीरका तापमान देखा तो वे स्तब्ध रह गये, क्योंकि तापमान बिलकुल सामान्य हो गया था। उसके पश्चात् बिना किसी दवा-सेवनके मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। धन्य है उस प्रभुकी अहैतुकी कृपा। संकटमोचनने मुझे संकटसे मुक्त कर दिया था। मैं हनुमंतलालजीका स्मरण करने लगा—

नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥

—मुरलीधर

(३)

'बोल-बम'की महिमा

सन् १९६६ ई०के श्रावण मासकी घटना है। मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र तथा पत्नीके साथ काँवर लेकर सुलतानगंजसे श्रीवैद्यनाथधामकी पदयात्रापर था। 'बोल-बम', 'बोल-बम' के स्वरसे दिशाओंको गुँजाते हुए काँवरियोंका जुलूस उल्लसित एवं उत्साहित मनसे अग्रसर होता जा रहा था। सभीमें जैसे नवीन स्फूर्ति उद्भासित हो चुकी थी। कितने तो नाचते, गाते, झूमते हुए वातावरणको आनन्दमय बना रहे थे और कई लोग दण्ड-प्रणामद्वारा उस लंबी यात्राको अपने-अपने शरीरकी लंबाईसे माप रहे थे।

मेरा ज्येष्ठ पुत्र पिछले ही साल एम्० एस्० सी० की परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुका था। अतः उसके विद्यार्जन-अवधिके समापन-पर्वकी पूर्णाहुति 'बाबा'के चरणोंमें ही सम्पन्न करनेकी आन्तरिक अभिलाषासे मैंने उस वर्ष उसे भी साथमें ले लिया था।

पद-यात्राका प्रथम चरण सुलतानगंजसे असरगंज नामक ग्रामतक ही सीमित रहा। फिर अगले दिन वहाँसे चलकर कुम्हड़सार नदीके पार 'पंच-मन्दिर'में टिकनेकी योजना बनी। परंतु उक्त नदीके इस किनारेपर ही पहुँचते-न-पहुँचते दिनका अवसान हो गया और भाड़ेके घोड़ेपर सामान ढोनेवाले हमारे आदमीने नदी पार करनेमें यह कहकर असमर्थता प्रकट की कि संध्या हो जानेके कारण घोड़ा नदीको पार नहीं कर सकेगा। विवश होकर हमें वहीं दुर्गा-मन्दिरके ओसारेपर पड़ाव डालना पड़ा।

अब संयोगकी बात कि कुछ समय बाद ही मेरे पुत्रको दस्त आना आरम्भ हो गया, जिसने शीघ्र ही हैजेका-सा रूप धारण कर लिया। बार-बार उल्टी और पतला दस्त। सावनके मेघाच्छन्न आकाशसे घिरी अँधेरी रातका प्रारम्भ तथा बादलोंका गर्जन-वर्षण। अपरिचित स्थान। पुरवैया बयारका झोंका। रोगीका क्षण-प्रतिक्षण शिथिल हो रहा गात। औषधोपचारका कोई समुचित प्रबन्ध नहीं। धीरे-धीरे वर्षाका वेग बढ़ता गया। यहाँतक कि दस बजेतक मूसलाधार पानी

झमाझम बरसने लगा। छींटोंके प्रहारसे बचानेके लिये मैं अपने पुत्रको सामनेके ही एक अन्य मकानमें किसी प्रकार ले गया। पर वहाँ भी चैन नहीं। छतसे लगी सीढ़ीकी ओटमें शरण ली। फिर भी न तो वर्षाकी बूँदोंसे बचा जा सकता था और न ही बरसाती हवासे त्राण मिल पाता था। मेरे पास मात्र एक कम्बल था, जिससे येन-केन-प्रकारेण डूबतेको तिनकेका सहारा मिल रहा था। ऐसी विषम परिस्थिति तथा नैराश्यपूर्ण ऊहापोहमें मेरा कलेजा धक्से रह गया। कुत्तोंने भी रोना शुरू कर दिया तथा उनके कर्ण-कटु क्रन्दनको सुनकर अपशकुनकी सम्भावनासे मैं बहुत ही घबड़ा उठा।

यात्रियोंकी अत्यधिक भीड़के कारण उस संकुचित स्थानमें सुरक्षा-योग्य कोई अन्य जगह खोज पाना दुष्कर था। साथ ही जो अपने-पराये सहयात्री थे, सभी यात्राकी थकावटसे चूर निद्राभिभूत हो बेसुध पड़ गये थे। अतः उस विकट परिस्थितिमें किसीसे भी सहायताकी अपेक्षा व्यर्थ थी। मेरी स्वयंकी हालत अत्यन्त दयनीय हो गयी। क्या करूँ और क्या न करूँ इस समस्यासे उलझा मैं किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। मेरी पत्नी मृतप्राय अपने बच्चेकी प्राण-रक्षा-हेतु सभी सम्भव चेष्टा धैर्यपूर्वक कर रही थी। पुत्रको अब साँस लेनेमें भी कठिनाईका अनुभव हो रहा था। नाड़ीकी गति मन्दतर होने लगी। मैं बहुत निराश हो गया और मैंने यह निश्चित-सा कर लिया कि पुत्रका बचना मुश्किल दीखता है। मैं निराश्रित-सा होकर सिर थामे बैठ गया। उसी समय मेरे अंदरसे सहसा एक आवाज उठी कि 'वत्स! घबड़ाओ मत। काँवरिया जब गङ्गा-जल बोझता है और उसे भूतभावन भगवान् सदाशिवको अर्पण करनेके निमित्त संकल्प कर लेता है तभीसे वह अपने व्यक्तिगत शुभाशुभके बोझसे मुक्त हो जाता है और उसका एकमात्र सम्बल 'बोल-बम', 'बोल-बम' का पवित्र मन्त्रोच्चार ही रह जाता है, जिसके आसरे दुर्गम पथकी कठिनाइयों तथा अप्रत्याशित विघ्न-बाधाओंको सुगमतासे झेल पानेमें वह समर्थ हो जाता है और उसका कष्ट भी दूर हो जाता है।'

इस आवाजको सुनकर पहले तो मैं चौंक उठा, किंतु फिर आश्वस्त हो तात्कालिक एवं आसन्न आपदासे जैसे विरत हो गया तथा मन मङ्गलमय भगवान् शंकरकी आराधनामें लीन हो गया। मुखसे स्वतः प्रभु-स्तुति निःसृत होने लगी। टूटे-फूटे शब्दोंमें मैं झूम-झूमकर भाव-विभोर हो गुनगुनाने लगा—

'जय शिव ओंकारा, भज शिव ओंकारा।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्धांगी धारा ॥ जय शिव० ॥

मेरा अन्तर्मन प्रभु-भजनमें इतना तन्मय हो गया कि मैं अपनी सुध-बुध खो बैठा। भावनामात्र यही शेष रह गयी कि हे दीनदयाल! यह अकिंचन तो अब कोई व्यवस्था करनेसे रहा। तुम तो निराश्रितोंके आश्रय, निस्सहायोंके सहायक, दीनोंके नाथ तथा सर्वज्ञ हो। सब कुछ तुमपर न्योछावर है। शरणागतकी रक्षा करो भगवन्!

कुछ ही क्षणोंके पश्चात् ज्ञात हुआ, जैसे मेरे तमसाच्छन्न मनके किसी कोनेमें आशाकी किरण फूट पड़ी है। विश्वास होने लगा कि भगवान्ने मेरी सुन ली है। साथ ही एक चमत्कार भी हुआ। देखता क्या हूँ कि उस घनघोर वर्षामें छाता लगाये प्रायः भींगते हुए एक सज्जनने वहाँ पदार्पण किया जो उस स्थानपर चिकित्सा-कार्य करते थे। उस समय रात्रिके लगभग साढ़े ग्यारह बज चुके थे। मुझे पता भी नहीं था कि उस प्रलयकालमें उनके आगमनकी सम्भावना वहाँ हो सकती थी।

मेरे अनुरोधपर उन्होंने रोगीकी देख-भाल शुरू कर दी। रह-रहकर मेरा भोलेनाथपर ध्यान चला जाता तथा मुखसे 'जय शिव ओंकारा....' की ध्वनि पुनः-पुनः प्रस्फुटित हो जाती। समय बीतता गया, उपचार जारी था। बार-बार पूछनेपर भी डॉक्टर साहब निश्चयरूपसे रोग-निवारणका आश्वासन नहीं दे पा रहे थे। धड़कते हृदयसे 'होनी' का ही सामना करना था। अन्तमें लगभग तीन बजे भोरमें रोगीको साधारण-सा ज्वर हो आया तथा नींद आ गयी, तब जाकर डॉक्टर साहबने रोगीके पूर्ण स्वस्थ हो जानेकी दृढ़ आशा बँधायी। हमारी तो जानमें जान आयी।

सबेरा होते ही मैं डॉक्टर साहबकी सेवामें उपस्थित हुआ। अनेकानेक धन्यवाद-ज्ञापनके पश्चात् मैंने पारिश्रमिक-स्वरूप कुछ धन-राशि स्वीकार करनेकी उनसे प्रार्थना की। परंतु दयालु, कर्तव्यनिष्ठ, ईमानदार तथा निःस्पृह उन सज्जन चिकित्सकने मात्र दवाओंके उचित मूल्यसे अधिक लेनेसे साफ इनकार कर दिया। वार्तालापके क्रममें ज्ञात हुआ कि उस स्थानसे कम-से-कम पाँच मीलके अर्ध-व्यासकी दूरीमें तो खोजनेपर भी कोई डॉक्टर ही नहीं मिलता। स्वयं वे तो किसी

दूरके गाँवसे एक असाध्य रोगका इलाज करनेके लिये बुलवाये गये थे और शामसे ही पानी बरस जानेके कारण उन्होंने रात्रि वहीं बितानेकी ठानी थी। मैं भोले शंकरकी अदृश्य अनुकम्पापर कृतकृत्य हो रहा था कि मुझ अकिंचनकी सहायताके लिये वे डॉक्टरके रूपमें आये और उन्होंने ऐसे समयमें मेरे पुत्रको जीवनदान दिया जबकि सिवा मृत्युमुखमें जानेके और कोई चारा नहीं दीखता था। 'बोल-बम'का चमत्कार देखकर मेरा तो रोम-रोम खिल उठा।—शंकरप्रसाद

मनन करने योग्य

पापसे बड़ा कौन ?

एक गाँवमें एक सदाचारी ब्राह्मण-परिवार रहता था, इस परिवारमें एक पुत्र था। पण्डितजीने उसका नाम विवेकशील रखा। उसे विद्याध्ययनके लिये पण्डितजीने काशी भेजा। पुत्र भी होनहार था। दस वर्षोंके अथक परिश्रमके पश्चात् पण्डितजीके होनहार पुत्रने सभी विद्याओंका अध्ययन कर लिया और फिर वह अपने गाँव वापस आ गया। गाँववाले उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उसके स्वागतमें एक दिन सभाका आयोजन किया गया, जिसमें सभी जिज्ञासु जनोंको अपनी शङ्काओंको प्रस्तुत करनेका अवसर प्राप्त था। विवेकशीलने सभी जिज्ञासुओंकी शङ्काका यथासम्भव निवारण कर सभीको संतुष्ट कर दिया।

इसी बीच एक सीधे-सरल जिज्ञासुने विवेकशीलसे पूछा कि 'पापसे बड़ा कौन है ?' परंतु बहुत देरतक विचार करनेपर भी कोई उत्तर विवेकशीलको नहीं सूझा। प्रश्नका उत्तर न दे सकनेके कारण विवेकशील बहुत खिन्न हुआ और उसने यह ठान लिया कि जैसे भी हो इस प्रश्नका उत्तर ढूँढ़ ही निकालूँगा। उसके लिये उसने पुनः काशी जानेका निश्चय किया और फिर वह काशीके लिये चल पड़ा। चलते-चलते रात हो गयी, थक भी गया था। उसे एक स्थानपर एक मकान दिखायी दिया। उसके चबूतरेपर वह रात्रि-विश्राम करनेके लिये लेट गया। दिनभरकी लंबी यात्रा तथा थकानके कारण उसे गहरी नींद आ गयी और यह आभास भी नहीं हो सका कि सूर्योदय कब हो गया।

दिन निकलनेके पश्चात् एक युवती स्त्रीने विवेकशीलको जगाया और पूछा कि 'आप कौन हैं, कहाँ जा रहे हैं, यहाँ कैसे सो रहे हैं ?' लड़केने कहा—'मैं पथिक हूँ, एक प्रश्नके समाधानके लिये काशी जा रहा हूँ, रात हो गयी थी, थक गया था, इसलिये यहाँ लेट गया, कोई त्रुटि हो गयी हो तो उसके लिये क्षमा-प्रार्थी हूँ।' इसपर उस स्त्रीने पूछा—आपका प्रश्न क्या है, लड़केने कहा—'मैं यह जानना चाहता हूँ कि 'पापसे बड़ा कौन है ?' इसपर उसने कहा कि प्रश्नका उत्तर न मिले यह तो अनुचित है, आप काशी अवश्य जायँ, परंतु मेरे परिवारका यह नियम है कि अतिथिको बिना भोजन कराये नहीं जाने दिया जाता। आप स्नान कर लें और भोजन कर लें तब जायँ। विवेकशीलने पूछा कि आप कौन हैं? उस स्त्रीने सत्य-सत्य बता दिया कि वह एक 'वेश्या' है। इसपर विवेकशील कुछ सोचमें पड़ गया। वह मन-ही-मन कहने लगा—ओह ! यह तो बड़ा अनर्थ हो गया, मैं तो गलत स्थानपर ठहर गया, इसका तो मुझे प्रायश्चित्त करना होगा। ब्राह्मण युवककी चुप्पी देखकर युवती उसके मनका सारा हाल जान गयी और बोली—'ब्राह्मण देवता ! आप कोई ग्लानि न करें। कोई चिन्ता न करें, घरके आँगनमें कुआँ है, वहाँ आप स्नान कर लें। बाजारसे भोजनकी सामग्री मँगा दूँगी, आप स्वयं भोजन बना लें और दक्षिणाके पाँच सौ रुपये आप पहले ले लें।' कुछ सोचकर ब्राह्मण युवक राजी हो गया।

जब भोजन बनकर तैयार हो गया तो तरुणीने कहा—'आप एक ग्रास अपने हाथसे मुझे भी खिला दें, जिससे मेरा भी उद्धार हो जाय। इसपर उसने कहा कि मैं स्वयं भ्रष्ट हो जाऊँगा, ऐसा कार्य मैं नहीं करूँगा। वेश्याने कहा—आप अपनी शुद्धि कर लीजियेगा। शास्त्रके अनुसार तो शुद्धि हो जाती है और इसके निमित्त आप एक हजार रुपये अग्रिम ले लीजिये। ब्राह्मण बालकका लोभ जाग्रत् हो चुका था। फलतः वह तैयार हो गया। फिर जैसे ही पण्डितजीके बालकने युवतीके मुखमें ग्रास देना चाहा, तभी कुछ दूर हटकर वह ठहाका मारकर बड़ी जोरसे हँस पड़ी। हँसी देखकर ब्राह्मण युवक अवाक् रह गया। उसकी समझमें कुछ भी नहीं आया।

अन्तमें उसने पूछा—तुम क्यों हँस रही हो ? तो उसने कहा कि 'आपके प्रश्नका उत्तर देनेके लिये।' लड़केने पूछा—'क्या उत्तर है ?' उसने कहा—'आप स्वयं ही हैं। लोभ ही पापसे बड़ा है।' पण्डितजीके बालकको तो मानो साँप सूँघ गया। धीरे-धीरे उसकी समझमें आ गया कि लोभ ही पापका मूल हेतु है।

वास्तवमें पुण्य और पापकी जड़ त्रिगुणात्मिका बुद्धि है। इसीलिये गायत्री मन्त्रके '**धियो यो नः प्रचोदयात्**'के इस अन्तिम अंशमें सद्बुद्धिकी ही याचना की गयी है, राज-पाट, धन-दौलत, स्त्री-पुत्रकी नहीं। सुख कहाँ है, दुःख कहाँ है, इसका निर्णय भी संत-महात्मा, शास्त्र और सद्बुद्धिके द्वारा ही हो सकता है। गीता कहती है कि '**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते**'—रूप, रस, गन्ध, स्पर्शयुक्त भोग दुःखके घर हैं और नरकके भी दरवाजे हैं। इनकी इच्छा ही काम है, बाधा पड़नेपर क्रोध और पूरा होनेपर लोभ उत्पन्न हो जाता है। अतः ये तीनों ही एक ही पदार्थके पहलू हैं—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

(गीता १६।२१)

सत्संगसे सद्बुद्धि एवं दुःसंगसे दुर्बुद्धि उत्पन्न होती है। अतः कुसंगका सर्वथा परित्याग कर संतजनोंका, गीता, रामायण आदि सद्ग्रन्थोंका आश्रय ग्रहण कर अपने उद्धारका प्रयत्न करना चाहिये।

—सुश्री कुमारी रेनू

श्रीरामजन्मभूमिका विवाद

श्रीरामजन्मभूमि-निर्माणका प्रकरण आजकल विवादास्पद विषय बन गया है। कारण, देशकी राजनीतिक पार्टियाँ इस प्रकरणको लेकर अपना स्वार्थ-साधन करना चाहती हैं, यह इस देशका दुर्भाग्य है।

वास्तवमें श्रीरामजन्मभूमि कोई मन्दिर-मस्जिद-विवाद नहीं है, कारण मन्दिर तो कहीं भी बनाया जा सकता है, इसी तरह मस्जिद भी कहीं रखी जा सकती है, परंतु जन्मभूमिका स्थान बदला नहीं जा सकता। वह भी ऐसी जन्मभूमि जो साक्षात् परब्रह्म परमात्माके अवतारकी भूमि हो। भगवान् श्रीराम पूर्णब्रह्म, साक्षात् परमात्माके रूपमें अपनी सम्पूर्ण कलाओंके साथ इस पवित्र भूमिपर अवतरित हुए थे। यह जन्मभूमि करोड़ों-करोड़ देशवासियोंका दिव्य स्मृतिस्थल है, जो अति पवित्र है। जहाँ थोड़ी साधना और उपासना करनेपर सिद्धि प्राप्त हो जाती है और जिसके दर्शन करनेसे अमोघ फलकी प्राप्ति हो जाती है। यहाँतक कि जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति भी मिलती है। यह बात मनगढ़ंत या काल्पनिक नहीं, बल्कि शास्त्रकी बात है। पुराणोंमें इसके संदर्भ मिलते हैं। 'भगवान् श्रीरामकी जन्मभूमि यही है', यह भी पुराणोंके इन वचनोंसे सिद्ध होता है। कुछ समय-पूर्व 'कल्याण'के अङ्कमें हमने पुराणोंके वचन उद्धृत किये थे। आज पुनः स्कन्दपुराण (वैष्णव-खण्ड, अयोध्या-माहात्म्य) के कुछ वचन हम यहाँ उद्धृत करते हैं, जिनसे स्वतः सब स्पष्ट हो जायगा—

तस्मात् स्थानादैशाने रामजन्म प्रवर्तते।
जन्मस्थानमिदं प्रोक्तं मोक्षादिफलसाधनम्॥

'(विघ्नेश्वरके) स्थानसे ईशानकोणमें राम-जन्मस्थान है। मोक्ष आदि सभी फलोंके देनेवाले इस स्थानको राम-जन्मस्थान कहा गया है।'

विघ्नेश्वरात् पूर्वभागे वासिष्ठादुत्तरे तथा।
लोमशात् पश्चिमे भागे जन्मस्थानं ततः स्मृतम्॥

'विघ्नेश्वरके पूर्वमें तथा वसिष्ठ-स्थानसे उत्तरमें, लोमश-स्थानसे पश्चिम दिशामें राम-जन्मस्थान है।'

यद्दृष्ट्वा च मनुष्यस्य गर्भवासजयो भवेत्।
विना दानेन तपसा विना तीर्थैर्विना मखैः॥

'रामजन्मभूमिके दर्शनमात्रसे बिना दानके, बिना तपके, बिना तीर्थयात्राके तथा बिना यज्ञ किये ही मुक्ति हो जाती है तथा फिर गर्भमें नहीं आना पड़ता।'

नवमीदिवसे प्राप्ते व्रतधारी हि मानवः।
स्नानदानप्रभावेण मुच्यते जन्मबन्धनात्॥

'रामनवमीके दिन रामनवमी-व्रत करनेवाला पुरुष स्नान-दान और तपके प्रभावसे जन्म-मरणके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।'

कपिलागोसहस्राणि यो ददाति दिने दिने।

तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥

'प्रतिदिन हजारों कपिला गौके दानसे जो फल मिलता है, वही फल जन्मभूमिके दर्शनमात्रसे मिल जाता है।'

आश्रमे वसतां पुंसां तापसानां च यत्फलम्।
राजसूयसहस्राणि प्रतिवर्षाग्निहोत्रतः॥

'आश्रममें निवास करनेवाले तपस्वीजनों, यावज्जीवन अग्निहोत्र करनेवालों तथा सहस्रों राजसूय-यज्ञ करनेवालोंको जो फल मिलता है, वही फल जन्मभूमिके दर्शनमात्रसे मिल जाता है।'

नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्मस्थाने विशेषतः।
मातापित्रोर्गुरुणा च भक्तिमुद्वहतां सताम्॥
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥

'माता-पिता और गुरुकी सदा भक्ति करनेवालों तथा ध्यानावस्थित या समाधिस्थ पुरुषोंके दर्शनसे जो फल मिलता है, वही फल जन्मभूमिके दर्शनमात्रसे मिल जाता है।'

उपर्युक्त वचनोंसे तथा जन्मभूमिके प्रत्यक्ष दर्शनसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि भगवान् श्रीरामकी जन्मभूमि यही है और इसकी अमित महिमा है।

जहाँतक साम्प्रदायिक सद्भावकी बात है, कोई भी आस्तिक हिन्दू आस्तिक मुसलमानको हृदयसे आदर देता है और इसी तरह कोई भी आस्तिक मुसलमान आस्तिक हिन्दूका भी आदर करता है। सबको अपने धर्मके अनुसार चलनेकी स्वतन्त्रता है। दो भाई एक साथ तभी रह सकते हैं, जब एक दूसरेके प्रति उनमें त्यागकी भावना हो और परस्पर समझदारी रहे। धर्म-निरपेक्षताके नामपर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातकी उपेक्षा कर देना और उसे टाल देना कोई बुद्धिमानीकी बात नहीं कही जा सकती। जहाँ पचास वर्षोंसे कोई नमाज नहीं पढ़ी जाती और जिसका उपयोग मस्जिदके रूपमें नहीं होता रहा, बल्कि उस स्थानपर राम-धुन-संकीर्तन, भगवान् रामललाके दर्शन-पूजन-भजन और संत-समागम होते आये हैं, उस स्थानको अभी भी मस्जिदकी संज्ञा देना और मस्जिद रखनेका आग्रह करना यह एक विडम्बना ही तो है। कोई भी दीनदार-ईमानदार मुसलमान देशवासियोंकी भावनाओंका समादर करता हुआ कभी भी विवादको बढ़ानेके पक्षमें नहीं हो सकता, बल्कि इस विवादको समाप्त करनेका ही पक्षधर होगा।

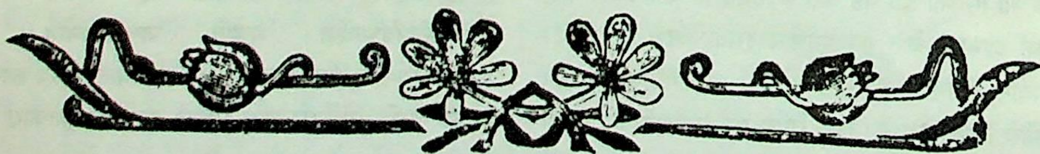
देशके कर्णधार राजनीतिक स्वार्थको अपने मनसे निकालकर शुद्ध भावनासे गम्भीरतापूर्वक यदि इसपर विचार करें तो समस्याका समाधान क्षणभरमें हो सकता है। इस प्रकरणको न्यायालयमें उलझाकर रखना समुचित नहीं। न्याय तो वही है, जो अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले जाय, राष्ट्रिय स्वाभिमानको जाग्रत् कर सके, सांस्कृतिक स्वाभिमानकी रक्षा कर सके और सार्वकालिक आदर्शों, मूल्यों एवं परम्पराओंके अनुरूप मानवमात्रके विकासमें सहायक हो। श्रीरामजन्मभूमि तो करोड़ों-करोड़ देशवासियोंकी भावनाओंसे जुड़ा एक ज्वलन्त प्रश्न है, जिसका समुचित समाधान तत्काल करते हुए सरकारको मर्यादापुरुषोत्तमश्रीराम-जन्मके इस स्मृति-स्थलके निर्माणमें बाधक नहीं बनना चाहिये।

जन्मभूमि श्रीरामको 'अति प्रिय' है और 'श्रीराम' हमारे आराध्य हैं। श्रीरामचरितमानसमें स्वयं भगवान् श्रीराम जन्मभूमिकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं—

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥

अतः हम सभी भारतवासियों तथा इस देशके कर्णधारोंका यह परम कर्तव्य है, इस प्राचीन मूल स्थानको सुरक्षित कर भारतीय जनमानसकी भावनाओंका समादर करें।

—सम्पादक



श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

(सम्पूर्ण ग्रन्थका अंग्रेजी-अनुवाद)

लगभग बीस वर्ष-पूर्व अंग्रेजी मासिक पत्र— 'THE KALYANA-KALPATARU' के विशेषाङ्क (Spl. No.–November 1973) Vol XXXIII No.–12 में श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ४१ (Canto 41) तक मूल, अंग्रेजी-अनुवादके साथ प्रकाशित हुआ था। इसके आगेका अंश कतिपय कारणोंसे कई वर्षोंतक प्रकाशित नहीं हो सका, फलस्वरूप 'कल्याण-कल्पतरु' के पाठकोंसहित अन्यान्य इच्छुक महानुभावोंको भी इसका शेषांश पढ़नेको प्राप्त न हो सका। अब सभी सज्जनोंके लाभार्थ सम्पूर्ण ग्रन्थका अंग्रेजी-अनुवाद (ग्रन्थाकार) तीन भागोंमें उपलब्ध है। अतः 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) मासिकके जो ग्राहक महानुभाव और प्रेमी पाठक, उस समय उत्तरकाण्ड, सर्ग ४१ के आगेके शेषांशसे वञ्चित रह गये थे, उसका अब तीसरा भाग अथवा उतना ही बाकी अंश (UTTARA-KANDA, CANTO XLII to CXI—up to the End) अलगसे भी प्राप्त कर सकते हैं। अभी मुद्रित—केवल उक्त भाग (पृष्ठ-संख्या १४२) का मूल्य रु० १०.०० है; डाकखर्च अतिरिक्त। यह उपर्युक्त शेषांश अबसे लगभग चार माह (दिसम्बर १९९२) तक प्राप्त किया जा सकता है। इस निर्धारित अवधिके बाद इसे उपलब्ध कराना सम्भव न हो सकेगा। अतएव इच्छुक सज्जन मँगानेमें कृपया शीघ्रता करें।

पूरा सेट मँगानेवालोंके लिये आवश्यक जानकारी—

Part—I	(Bala-Kanda & Ayodhya-kanda)	Pages—648	Price Rs. 60.00	Postage—Rs. 14.00
Part—II	(Aranya-Kanda to Sundara-Kanda)	Pages—720	,, Rs. 60.00	Postage—Rs. 15.00
Part—III	(Yudha-Kanda & Uttara-kanda)	Pages—827	,, Rs. 65.00	Postage—Rs. 15.00

Price for the complete set (in three parts) Rs. 185.00, Packing and Postage Rs. 31.00 extra.

गीता-दैनन्दिनी (सन् १९९३ ई०)

(इस बार दो आकार-प्रकारमें)

'गीता-दैनन्दिनी' १९९३—सामान्य संस्करणके अतिरिक्त एक पुस्तकाकार-संस्करण (नवीन साज-सज्जाके साथ) इस वर्ष सितम्बर १९९२ तक उपलब्ध करानेकी योजना है।

(१) **सामान्य संस्करण**—प्रतिवर्षके आकार-प्रकारमें, मूल्य रु० ६.००।

(२) **पुस्तकाकार-संस्करण**—आकार ८"×५ $\frac{1}{4}$", अच्छे कागज (मैपलिथो-पेपर) पर स्वच्छ, सुन्दर छपाईसे युक्त, पृष्ठ-संख्या लगभग ४००, प्लास्टिक-जॉकिटसे सज्जित आकर्षक जिल्द।

तिथि, वार, नक्षत्र, ग्रहण, त्योहार, जयन्ती आदिके आवश्यक उल्लेखके साथ, श्रीमद्भगवद्गीताका सम्पूर्ण मूल पाठ एवं व्यवहार तथा परमार्थ-सम्बन्धी अनेक उपयोगी सामग्री इसकी विशेषताएँ हैं। आरम्भमें ध्यान करने योग्य भगवान्‌का एक सुन्दर बहुरंगा चित्र भी रहेगा। मूल्य रु० २०.०० मात्र, डाकखर्च अतिरिक्त।

इच्छुक सज्जनोंको पूर्व आर्डर भेजकर अपनी प्रतियाँ सुरक्षित करा लेनी चाहिये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३००५